७१८

सप्रमाण

रुद्राक्ष तुलसी शालग्राम तथा पशुपतिदर्शनमाहात्म्य

सङ्कलक तथा अनुवादक

पं. लोकनाथ आचार्य [धर्मशास्त्रशास्त्री]

पशुपतिसमं लिङ्गं वाग्वत्या च समा नदी ॥
गुह्येश्वरीसमं पीठं नास्ति ब्रह्माण्डमण्डले ॥

वाल्मीकि विद्यापीठ (दयाम्पस)
पुस्तकालयलाई
सम्पर्ण—
लोकनाथ
२०७२-२८

सप्रमाण

रुद्राक्ष तुलसी शालग्राम तथा

पशुपतिदर्शनमाहात्म्य

इ.प्र.१२८

सङ्कलक तथा अनुवादक

पं. लोकनाथ आचार्य [धर्मशास्त्रशास्त्री]

पशुपति देवपत्तन, काठमाडौं, नेपाल ।

प्रकाशक

वासुदेव प्रसाद खतिओडा

पशुपति देवपत्तन, काठमाडौं नेपाल ।

दर्शन.

९०४८८

@ 23: 4445

ACH

2036. 3.5

[सर्वाधिकार लेखकद्वारा सुरक्षित]

वि० सं० २०३७ आषाढ १

१४ जून १९८०

मूल्य.- ५।५०

मुद्रक

लुष प्रेस

पुलचोक, ललितपुर ।

सम्मति

रुद्राक्ष और शालग्राम इन दोनों अति पवित्र पापनाशक देवरत्नों का और साक्षात् महालक्ष्मीस्वरूपा तुलसी का एवं पुण्य भूमि पशुपति क्षेत्रका विशद वर्णन करना मनुष्यसुलभ बात नहीं है, इन वस्तुओं का यथार्थ वर्णन तो स्वयं श्री पशुपतिनाथ ही कर सकते हैं, अथवा सर्वविद्याधिष्ठात्री श्री सरस्वती ही कर सकती हैं इस में संदेह नहीं, इस शाश्वत सत्य के होते हुए भी अति परिश्रमी एवं विद्वान् लेखक श्री लोकनाथ आचार्यजी ने इन सभी वस्तुओंका संक्षिप्त सरस एवं सरल वर्णन कर यथार्थता का रहस्योद्घाटन कर दिया है, इस से सभी हिन्दुधर्मावलम्बी पाठकगण अवश्य ही लाभान्वित होगें, ऐसे पुनीत कार्य में संलग्न लेखक को भगवान् सदा स्वस्थ एवं सुखी बनावें, प्रस्तुत पुस्तक के दूसरे संस्करण में लेखकद्वारा अन्य कतिपय महत्व-पूर्ण विषयों का भी ऐसे ही वर्णन समाविष्ट होनेकी आशा रख कर अन्तमे इस सुकृत्य को आर्थिक सहयोगद्वारा सफलीभूत करने वाले प्रकाशक श्री वासुदेव प्रसाद खतिओडा को भी सहस्रशः धन्यवाद अर्पण करता हूँ ।

श्री श्रीकृष्ण अधिकारी
का० मु० प्रधानाध्यापक
सं० मा० वि० रानीपोखरी काठमाडौं

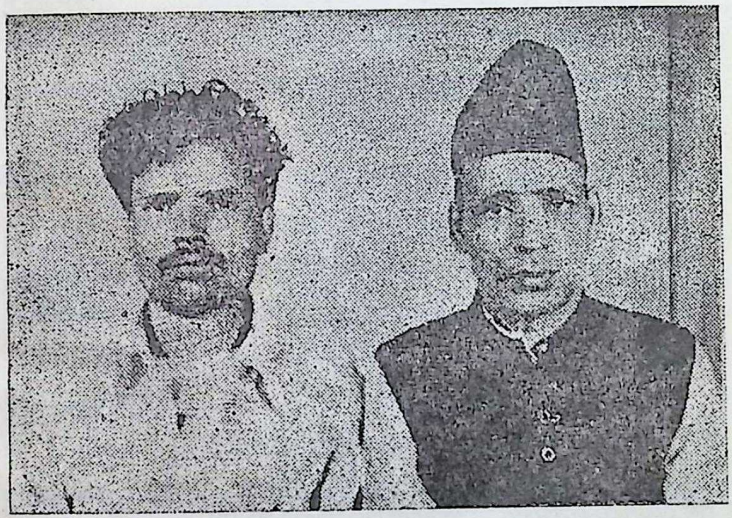

श्री वासुदेव प्रसाद खतिओडा तथा पं. लोकनाथ आचार्य

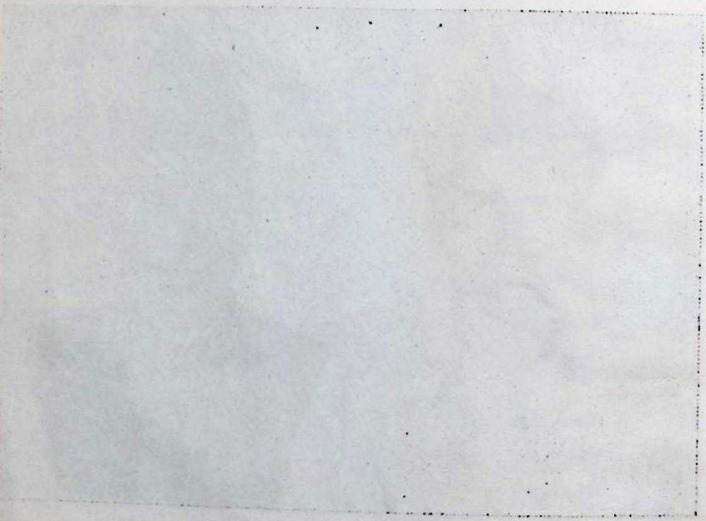

कृतज्ञता

केवल श्रद्धा और आस्थाका साधन सम्बल लिए हुए इस उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य में हाथ लगाने का साहस मैंने किया है। मेरा यह साहस उपयुक्त वा अनुपयुक्त क्या हुआ यह विज्ञजन के ठहर का विषय हैं। मेरा प्रयास जो जैसा सावित होगा, उसका यश अपयशको मुझे स्वयं वहन करना होगा, परन्तु यह सार्थक काम होने में इसका कल्याण मय पक्ष सर्व सुलभ जितना हो सकेगा उतना श्रेय इस पुस्तकका प्रकाशक को ही प्राप्त होगा इस में कोइ सक नहीं। अनुवादक तो केवल कलम मात्र चला सकता था। प्रकाशन का गुरुतर अभिभारा अपने सामर्थ्य से वाहर का रहा। इसी स्थिति में अन्य कई मेरे कृतियाँ ऐसे ही पडे हैं, तो कुछ 'प्रज्ञा' प्रतिष्ठान मे दिया हूँ तो कुछ औरों को। अव शषों के लिए क्या प्रयास होना चाहिए इस में मेरा मन हत सा ह गया था।

परम प्रिय भाइ श्री वासुदेव प्रसाद खतिओडाजी का निः-स्वार्थ उदारता से यह पुस्तक प्रकाशन कार्य संभव होने जा रहा है मै मात्र नहीं आनेवाले श्रद्धालु जिज्ञासु स्वदेशी (नेपाली) और बाहर से आने वाले यात्रिओं भी इस कार्य मे प्रकाशकका चिर ऋणी होंगे। इस मे रहा त्रुटि वा कमी को गुणैकपक्षपाती जन सें सूचना मिलने पर किंवा द्वितीय संस्करण में संशोधन एवं संवर्धन भी किया ही करेंगे। अन्त में:-

पशुजानां मुमुक्षूणां शिवसायुज्यसिद्धये ।।
रुद्राक्ष-तुलसी-शालग्राम- क्षेत्रस्य चाऽसकृत् ।।१।।
लेखःस्तवाऽनुवादश्च मयाऽऽचार्येण निर्मितौ ।।
मङ्गलौ सर्वलोकानां नित्यं स्वीकारतां नयेत् ।।२।।
सप्तत्रिंशोत्तरेऽब्दे हि द्विसहस्रतमे शनौ ।।
चतुर्थे दिवसे ज्येष्ठमासस्य हि प्रभातके ।।३।।
प्रस्तावको वासुदेव–खतिओडा मम प्रियः ।
चिरं जीव्यात् सदा कुर्यात् कार्यमीदृक् सुजन्मनि ।।४।।
काम्यत्येव नु सत्यमाचार्येत्युपनामकः ।
लोकनाथः शास्त्रिनामधेयेन समलङ्कृतः ।।५।।

पशुजन्म को छोड़देने की इच्छा रखने वालों के लिए, शिव सायुज्य सिद्धि निमित्तक रुद्राक्ष–तुलसी–शालग्राम– और पशुपति क्षेत्र संबन्धी अलग-अलग लेख और तत्तत् (मूल-पौराणिक उक्ति) स्तवादि का अनुवाद भी मै (शिक्षक) ने निर्माण किए हुए सभी जनों के लिए मङ्गल कारक भी हैं, अतः इसे स्वीकार किया करें। २०३७ विक्रम सम्वत् ज्येष्ठ चार गते शनिवार प्रातकाल में प्रस्ताव करने वाला वासुदेव खतिओडा मेरा प्रिय है वह दीर्घ जीवी हो और भाग्य से मिला मनुष्य जन्म में ऐसा ही कार्य किया करें (कहकर) आचार्य उपनामक, शास्त्री पद से विभूषित (यह) लोकनाथ निश्चय ही सत्य कामना करता है। इति।

प्रकाशक की उक्ति

हमारे पूर्वाचार्य श्रीमनुजीका कथनाऽनुसार भी हमारा देश 'नेपाल अधिराज्य' आर्यावर्त है। आर्यावत यह संज्ञा आर्या अर्थात् जगज्जननी पार्वती की जन्मभूमि हिमालय और उन्होंने तपश्चर्या रूप लीलाएँ की हुई तपोभूमि से संबन्धित है, और स्मरणीय है कि आर्या (पार्वती) ने नेपाल-पुण्य भूमि आर्याघाट तीर्थ में (वर्तमान पाशुपत क्षेत्र वाग्मती तट पर) भगवान् आशुतोष मृग-रूप धारी (पशुपति) ज्योतिः स्वरूप शङ्कर भगवान् की आराधना में तल्लीन रही और तपस्या की थी, उस पवित्रतम तीर्थ आर्यावर्त का शिर माना जाता है एवं यहाँ पर संकल्प पढने में 'आर्या तीर्थे' कहकर और अन्यत्र आर्यावतान्तर्गत अमुक स्थाने आदि नाम ग्रहण पूर्वक सङ्कल्प पढा जाता है औ नित्य नैमित्तिक क्रियाएँ किये जाते है।

आर्यावर्त पुण्य भूमिका सीमाङ्कन करते समय मनु ने पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र और हिमालय का समतल भाग से दक्षिण विन्ध्याचल पर्वत अर्थात् उत्तर हिमालय दक्षिण कन्या कुमारी तकका भूभाग को 'आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः' इस, कोशकार की उक्ति को प्रमाणित किए है वैसाही "आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः" ।। को भी प्रमाणित किए है। यही अखण्ड आर्यो का सीमा

हो आर्यावर्त है, इसी भूभाग मे राजा भरतका सार्वभौम आधिपत्त्य रहने से 'भारतवर्ष' भी कहजाने लगा था आज भी धार्मिक संस्कृति की दृष्टि से उसे स्वीकारते आए हैं। उन्ही आर्यो के वंशज आर्यों ने आर्य--भूमि की मर्यादा को अखण्ड सुरक्षित रखा हम उन्हीं आर्यो के लाल है तो हमारा भी कर्तव्य है अपना आर्यत्व को सुरक्षित रखें, दयालु, दाता, विनयी, श्रुतिमान् स्मृतिमान् सदाचारी, निष्कपट, पुनीत, सात्विक, शुद्धाहारी,नीतिमान् प्रेमी, विशेष गुण सम्पन्न व्यक्ति ही आर्य कहलाते है। वे अपने को और अपना समाज को इस प्रकार देखते थे:–

वर्णाश्चत्वार आर्याःस्युरन्योन्यं भ्रातरो मताः ।
तेषां कर्तव्यमेवेदमार्यावर्तस्य रक्षणम् ।।१।।
देशो जातिश्च धर्मश्च यत्र आर्यत्वरक्षकाः ।।
पूर्वं पूर्वो रक्षणीयस्ततो जातिस्ततोऽपरः ।।२।।
आर्यदेशः सर्वपूर्वं रक्षणीयः प्रयत्नतः ।
नेपालः प्राग्भवो देशस्तेषु वेदस्य रक्षकः ।।३।।

अर्थात् वेद संस्कृति का रक्षा परंपरा हमारे यहा चलि आई है। उसे हम ने भी रक्षा करनी है उसका सर्वजन हिताय रहे। सिद्धान्त संस्कृति आचार, इतिहासों का बोध सर्वजन सुबोध करना आवश्यक होने से इसे लेखवा कर छपाने और प्रचार करनेका उद्देश्य हमने लिया है जो जैसा हो। विज्ञजन गुणों को स्वीकार कर हमे उत्साहित करेंगे हो अस्तु।

वासुदेव प्रसाद खतिओडा

रुद्राक्षधारण और महिमाः-

(संक्षिप्त)

अथ रुद्राक्षधारणं तन्महिमा च पुराणादिषु

-O-

शिखायां हस्तयोः कण्ठे कर्णयोश्चाऽपि यो नरः ।
रुद्राक्षं धारयेद् भक्त्या स शैवं लोकमाप्नुयात् ।।१।।

जो मनुष्य शिखा-(चोटी) में दोनों हाथों मे गलामें वा दोनों कानों में भक्ति पूर्वक रुद्राक्ष को धारण करेगा वह मनुष्य शिवलोक को प्राप्त होगा ।।१।।

नववक्त्रं तु रुद्राक्षं धारयेद्वामबाहुना ।
चतुर्दशमुखं चैव शिखायां धारयेद्बुधः ।।२।।

बुद्धिमान् जन नौमुखवाला रुद्राक्ष वाम हाथ में, चौदह मुख वाला रुद्राक्ष को शिखा (चोटी) पर धारणा किया करें ।।२।।

तत्र शिवरहस्ये विशेषः-

एकवक्त्रः शिवः साक्षात् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
अबध्यत्वं प्रतिश्रोतो वह्निस्तम्भं करोति च ।।३।।

एकमुखी रुद्राक्ष प्रत्यक्ष शिवजी हैं, वह ब्रह्महत्या (पाप) को नाश करते हैं, और अवध्य भाव को स्वीकारते हुए अग्नि स्तम्भन भी करदेते हैं ।।३।।

ऐसा शिवरहस्य नामक ग्रन्थ में लिखा हैं ।

द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद् गोवधाद्यघनाशकृत् ।
त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माऽथ पापराशि प्रणाशयेत् ।।४।।

दोमुखी रुद्राक्ष हर (शिव) और गौरी (पार्वती) हैं; गोवध आदि पापको नाश करते हैं तीनमुखी रुद्राक्ष अग्निजन्मा (कार्तिकेय) हैं, पापों के समूहोंको नाश करते हैं ।।४।।

चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्षपापनुत् ।।५।।

चारमुखी रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माजी हैं, ब्रह्महत्या– (ब्राह्मण-वध वा ब्रह्मको नजानने का पाप) को नाश करते हैं । पञ्चमुखी रुद्राक्ष कालाग्नि रुद्र की स्वरूप हैं वह अगम्यगमन और अभक्ष्य भक्षणजन्य पापको नाश करते हैं ।।५।।

षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यां विनाशयेत् ।
सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात्स्वर्णस्तेयादिपापहृत् ।।६।।

षड्मुख रुद्राक्ष कार्तिकेय (किंवा परमेश्वर विष्णु) हैं जो गर्भपातजन्य पाप को नाश करते हैं। सप्तमुखी रुद्राक्ष अनन्त (वासुकी नागराज वा महाविष्णु) हैं वह सोना आदि चोरी करने से उत्पन्न पाप को नाश करते हैं ।।६।।

विनायकोऽष्टवक्त्रःस्यात्सर्वानृतविनाशकृत् ।
भैरवो नववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः ।।७।।

अष्ट मुखी रुद्राक्ष सम्पूर्ण असत्यों को नाश करते हैं। नौ मुखी रुद्राक्ष भैरवदेव हैं, वे शिवसायुज्य–गति करनेवाले हैं ।।७।।

दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः ।
एकादशमुखो रुद्रो नानायज्ञफलप्रदः ।।८।।

दशमुखी रुद्राक्ष को विष्णु मानना होगा, वह भूत–प्रेतों के भयको नाश करते हैं । ग्यारहमुखी रुद्राक्ष–विविध यज्ञों का फल को प्रदान करते हैं ।।८।।

द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः ।
त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः ।।९।।

बारहमुखी रुद्राक्ष भगवान् सूर्य का स्वरूप हैं और सब रोगों को नाश करने वाले हैं। तेरहमुख वाला रुद्राक्ष कामदेव हैं ये सब कामनाओं को पूर्णकर शुभफल प्रदान करते हैं। ९।।

चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ।
निच्छिद्राश्च सुपक्वाश्च रुद्राक्षा धारणे मताः ।।१०।।

चौंधहमुखी रुद्राक्ष श्रीकण्ठ (उमापति) महादेव हैं, यह-वंशका उद्धार करते हैं। छिद्र (छेद) रहित और अच्छी तरह पके हुए रुद्राक्षों को धारण करने का विधि उल्लेख किया गया हैं ।।१०।।

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् ।
रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ।।११।।

रुद्राक्ष का स्नान कराते समय पञ्चामृत [गौ का दूध, दही, घी, मधु, शर्करा (गुड)] और पञ्चगव्य [गौ का दूध ३ भाग, दही २ भाग, घी १ भाग गोमूत्र आधा भाग, गोवर ३ भाग, कुशोदक १ भाग] को प्रयोग करना होगा सर्व साधारण के लिए इसकी प्रतिष्ठा में मन्त्र पञ्चाक्षर [ॐ नमः शिवाय] और वेदज्ञ द्विजों को:—त्र्यम्बकादि वेद मन्त्र का ही प्रयोग करना अच्छा होगा ।।११।।

त्र्यम्बकादिमन्त्रं तु यथा तत्र प्रयोजयेत् ।।१२।।

ऐसा शास्त्रकारों की आज्ञा हैं ।।१२।।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ।।१३।।

दिव्यगन्ध से युक्त, मर्त्य धर्म से हीन, उभय लोक का फल-दाता, धनधान्यादियों से पुष्टि को वढाने वाले त्रिनेत्रसम्पन्न शिव शङ्कर भगवान्को हम सब पूजते हैं, उनकी प्रसन्नता से मृत्यु, अप-

मृत्यु, और संसारका मृत्यु से भी हम सब (मानव जीव) मुक्त होते हैं। ककडी जिस प्रकार अपने वन्धन से मुक्त होकर जमीन पर गिरता है वैसा हो शिवजी की कृपा से हम भव वन्धन से छुटते हैं। जन्म मरणरूप वन्धनों मे हम कभी न पडें। हम स्वर्गरूप मुक्ति से वञ्चित न हों, अभ्युदय, (उन्नति) निः श्रेयस– (मुक्ति) ये दोनों फलों से हम भ्रष्ट न हों ।।१३।।

ॐ अघोर ॐ ह्रौं अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूप ह्रौं स्वाहा।

अनेनापि च मन्त्रेण रुद्राक्षस्य द्विजोत्तमः।
प्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यात् ततोऽधिकफलं लभेत् ।।१४।।

अच्छे उत्तम आचार निष्ठ ब्राह्मण को उपर लिखे मन्त्रसे रुद्राक्ष की विधिवत् प्रतिष्ठा करनी करानी होगी, ऐसा करने से अधिक फल प्राप्त होता है, ।।१४।।

ततो यथा स्वमन्त्रेण धारयेद् भक्तिसंयुतः ।।१५।।

उसके वाद तत्तत् मुखके मन्त्रों से भक्ति पूर्वक धारण करें। उन मुखो के क्रमपूर्वक के मन्त्र ये है:–

ॐ ॐ भृशं नमः १। ॐ ॐ नमः २। ॐ ह्रीं नमः ३। ॐ ह्रूं नमः ४। ॐ ह्रुं नमः ५। ॐ ह्रूं ह्रूं नमः ६। ॐ सः ह्रं नमः ७। ॐ ह्रं नमः ८। ॐ ह्रीं नमः ९। ॐ श्रीं नमः १०। ॐ ह्रं ह्रीं नमः ११। ॐ श्रीं

नमः १२ । ॐ क्षां क्षौं नमः १३ । ॐ नमो नमः १४ । इति धारणमन्त्राः ।

रुद्राक्षे देहसंस्थे तु कुक्कुटो म्रियते यदि ।
सोऽपि रुद्रपदं याति किं पुनर्मानवा गुह ।।१६।।

हे कार्तिकेय यदि कुक्कुट (मुर्गा) भी रुद्राक्ष को देह में रख कर (धारण कर) मर जाए तो वह भी रुद्रलोक को प्राप्त होता हैं, तो मानवों का वात ही क्या ? ।।१६।।

जपमाला में रुद्राक्षों की संख्याः-

अष्टोत्तरशतैः कार्या चतुः पञ्चशताऽपि वा ।
सप्तविंशतिमाना वा ततो हीनाऽधमा स्मृताः ।।१७।।

एकसो आठ दानों की माला वनावे अथवा चवन्न दानोंकी माला बनावे अथवा सत्ताइस दानोंकी माला बनावें उससे कम दानों की माला अधम कही गई है ।।१७।।

मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् ।
पुष्टचर्थी पञ्चविंशत्या पञ्चदश्याभिचारके ।।१८।।
सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया ।
यः करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।।१९।।
यो ददाति द्विजातिभ्यो रुद्राक्षं शृणु षण्मुख ।
तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रःस्वपदं च प्रयच्छति ।।२०।।

मोक्ष को चाहने वाले पचीस दानों की माला से जप करें, धन चाहने वाले तीस दानों की माला से जप करें, पुष्टि चाहने वाले जन पचीस दानों की माला से जप करे, अभिचार कर्म में पन्द्रह दानों की माला से जप करे। सत्ताइस रुद्राक्षों को शरीरमें रखता हुआ व्यक्ति जैसा भी पुण्यकार्य करता है वह कोटिगुणा अधिक होता है। हे षण्मुख ! – जो मनुष्य द्विजातियों (ब्राह्मणों) को रुद्राक्ष दान देगा उस से भगवान् रुद्र प्रसन्न हो जाते हैं। और उसे अपनी पद–(रुद्रपद) प्रदान करते हैं ।।२०।।

पदार्थ दर्श में बोपदेव लिखते हैं:–

रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशती द्वे-
षट्-षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश–द्वादशैव ।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां–
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं सः स्वयं नीलकण्ठः।२१।

[यह श्लोक देवी भागवत ११ स्कन्ध ३ अध्याय में भी हैं]

कण्ठ- (गला) में ३२ रुद्राक्षों की माला, शिरमें ४० दानों-की माला, कानोंमे ६–६ दानो को माला, दोनों हाथों में बारह–बारह (१२–१२) दानों की माला, बाहू- (बाजू) में सोलह-सोलह दानों की माला दोनों आखोंके लिए कहकर एक-एक दाना (अलग), शिखा (चोटी) में एक दाना, हृदय के निमित्त एकसौ आठ दानों की माला जो आदमी पहनेगा वह आप से आप भगवान् शंकर के समान पूज्य- होता है, अर्थात् वैसा आदमी, पवित्र और आदरणीय गुणों से युक्त समझा जाता है ।।२१।।

अब और कुछ बातें देवी भागवत में हैं, जो जानना आवश्यक है। भगवान् नारायण नारद ऋषिको उपदेश देते हैं:—

बद्ध्वा स्वर्णेन रुद्राक्षं रजतेनाऽथवा मुने ।
शिखायां धारयेन्नित्यं कर्णयोर्वा समाहितः ।।२२।।

हे मुनिजी सोना वा चाँदी से बांधकर शिखा (चोटी) में वा कानों में नित्य रुद्राक्ष को धारण करें [देवी भा० ११।३।१८]।

यज्ञोपवीते हस्ते वा कण्ठे तुन्देऽथवा नरः ।
श्रीमत्पञ्चाक्षरेणैव प्रणवेन तथापि वा ।।२३।।
निर्व्याजभक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा ।
रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम् ।।२४।।

यज्ञोपवीत में हाथ में गला में उदर में (कटी में) कहीं भी हो छल-कपट रहित होकर भक्तिपूर्वक पञ्चाक्षर मन्त्र से और प्रणव मन्त्र से (जैसी इच्छा हो) बुद्धिवान् पुरुष प्रसन्न हो कर रुद्राक्ष को धारण करें, रुद्राक्षधारण करना शैव ज्ञानका साधन है ।।२४।।

रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत् ।
कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन् देव-देवीं च भावयेत् ।।२५।।
यज्ञोवीते वेदांश्च तथा हस्ते दिशः स्मरेत् ।
कण्ठे सरस्वतीं देवीं पावकं चापि भावयेत् ।।२६।।

रुद्राक्ष जो शिखामें धारण किया गया हो उसे तारकतत्त्व समझें, दोनों कानों में देव और देवी हैं ऐसा समझें, यज्ञोपवीत—

(जनेऊ) में सम्पूर्ण वेद हैं ऐसा समझें, हाथ में दिशाओंकी भावना करें, कण्ठस्थल में सरस्वती देवी और अग्नि की भावना किया करें ।।२५–२६।।

सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां च धारणम् ।
कर्तव्यं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्यवर्जिनाम् ।।२७।।

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास सभी आश्रमी ब्राह्मण, क्षत्रीय तथा वैश्य को मन्त्रपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना ऐसा कहा गया हैं; औरों के लिए नहीं ।।२७।।

रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो भवत्येव न संशयः ।
पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन् ।।२८।।
जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन् प्रलपन्नपि संततम् ।
कुर्वन्नपि सदा गच्छन् विसृजन्नपि मानवः ।।२९।।
रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते ।
अनेन भुक्तं देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत् ।।
पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं घ्रातं शिवेन तत् ।३०।।

रुद्राक्ष धारण करने से प्रत्येक मनुष्य रुद्र समान होता है इस में कोही शंका नहीं, । निषिद्ध वस्तुओं को देखने से, सुनने से, स्मरण करने से, सूँघने से, खाने से, बोलने से कुछ करने से, चलने से, किसी कर्मको छोडने से मनुष्य जो पाप का भागी हो जाता है वह उन सब पापों से रुद्राक्ष धारण करते ही मुक्त होता है। ऐसा

जो आदमी रुद्राक्षों को धारण करता हो, उसका खाया हुआ, पिया हुआ, और सूंघना सब शिव द्वारा किया जैसा होता है ३०

रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने ।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ।।३१।।

हे महामुनि नारदजी ! रुद्राक्ष पहनने में जिसे लज्जा हो उस मनुष्य को संसार के जन्म-मरणों से कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता है ।।३१।

रुद्राक्षधारणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः ।
उत्पत्तौ तस्य सांकर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः ।।३२।

रुद्राक्ष धारण करता देख कर जो निन्दा करता है, जानना कि उस की उत्पत्ति में वर्णसांकर्य हैं, वर्णसंकर ही निन्दा किया करता है ऐसा निश्चय कर लेनी चाहिए। ३२

रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात् ।
मुनयः सत्यसङ्कल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः ।।
रुद्राक्षधारणाच्छ्रेष्ठं न किञ्चिदपि विद्यते ।।३३।।

रुद्राक्ष धारण से ही रुद्र [सर्व दुःख और पापों को नष्ट करने वाला] रुद्रत्वमें प्राप्त हुए हैं, मुनिलोग सत्य सङ्कल्पवाले हुए और ब्रह्मा भी रुद्राक्ष से ब्रह्मत्व भाव में प्राप्त हुए हैं । रुद्राक्ष धारण से अधिक उत्तमता और कुछ नहीं है ।।३३।।

रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ।।३४।।
रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयेत् विमोदतः ।
पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।।३५।।
रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।।३६।।

रुद्राक्ष धारण किए हुए ब्राह्मण को भक्ति पूर्वक जो वस्त्र, अन्न, दान करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर शिव-लोक को प्राप्त होता है ।।३४।।

रुद्राक्ष धारण किए हुए साधु– ब्राह्मण को पितरों के श्राद्ध में प्रसन्नता पूर्वक भोजन करावे वह आगे जाकर चन्द्रलोक से पार पितृलोक में पहुंचता है, इस में शङ्का न किया करें । और रुद्राक्ष धारी साधु ब्राह्मणों के चरणों को जल से धोवें और उसे पान करे तो सर्व पापों से मुक्त होकर शिव लोक में सम्मान प्राप्त करता है ।।३६।।

हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः ।
रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन् रुद्रतामियात् ।।३७।।
रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते ।
समन्त्रकं वा मन्त्रेण रहितं भाववर्जितम् ।।३८।।
यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयापि वा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात् ।।३९।।

अहो ! रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम् ।।४०।।

रुद्राक्ष सहित मोती की माला, वा सुवर्ण कङ्कण, वा सुवर्ण को जो द्विजोत्तम भक्तिपूर्वक धारण करता है वह रूद्रत्व में प्राप्त होता है ।।३७।।

हे महामुनि जी केवल रुद्राक्ष ही क्यों न हो, कहीं किसी भी अंग में मन्त्र पूर्वक वा मन्त्र और भावों से रहित होकर भी धारण करें, आदमी जो कोही भी हो लजाता हुआ भी भक्तिपूर्वक धारण करें तो उसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है ।।४०।।

महान् आश्चर्य की वात है मुऊ से रुद्राक्षका माहात्म्य वर्णन नहीं - किया जा सकता है, इसलिए हर प्रयत्नों से रुद्राक्ष धारण किया करें मेरा कहना इतना ही है ।

[देवी भागवत ११।३ अध्याय समाप्ति] ।

एवं भूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो भवतानघ ।
वर्णितो महतां पूज्यः कारणं तत्र किं वद ।।१।।

नारदजी पूछते हैं कि हे नारायण आप निष्पाप है, आप वडोंका पूज्य रुद्राक्षका वर्णन किस लिए कर रहे हैं ? उस में कारण क्या हैं वह कहिए ।।१।।

एवमेव पुरा पृष्टो भगवान् गिरिशः प्रभुः ।
षण्मुखेन च रुद्रस्तं यदुवाच शृणुष्व तत् ।।२।।

भगवान् नारायण कहते हैं:- पहले इसी प्रकार का प्रश्न कार्तिकेय ने भगवान् गिरीश (शिव) से किए थे तो उसका प्रत्युत्तर में भगवान् रुद्र जो बोले हैं उसे मैं सुनाता हूँ सुनो । २ ।

शृणु षण्मुख तत्त्वेन कथयामि समासतः ।
त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽऽसीत् सर्वदुर्जयः ।।३।।
हतास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादि देवताः ।
सर्वैस्तु कथिते तस्मिंस्ततदाऽहं त्रिपुरं प्रति ।।४।।
अचिन्त्यं महाशस्त्रमघोराख्यं मनोहरम् ।
सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलन्तं घोररूपि यत् ।।५।।
त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां तारणाय च ।
सर्वविघ्नोपशमनमघोरास्त्रमचिन्तयम् ।।६।।
दिव्यवर्षसहस्रं तु चक्षुरुन्मीलितं मया ।
पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्यः पतिता जलबिन्दवः ।।७।।

भगवान् ईश्वर (शिव) ने कार्तिकेय को कही वात भगवान् नारायण नारदजी को सुना रहे है ।:- शिव बोले, हे षण्मुख कुमार मैं वास्तविक वात संक्षेप से कहता हूं सुनो । किसी से भी न जीता जाने वाला त्रिपुर नामका एक दैत्य था, उसने सभी- ब्रह्मा विष्णु आदि देवता ओं को पीटा दुःख दिया तो उस के लिए कुछ

किया जाय कहकर देवताओं ने मेरी प्रार्थना की तो मैने अघोर नामक अति मनोहर, सर्वदेवमय, दिव्य, और जलता हुआ भयङ्कर महाअस्त्र को चिन्तन की । उस समय ऐसी चिन्तना क्यों की ऐसी शंका हो तो मैं कह रहा हूँ कि- त्रिपुर नामक असुर का वध करने के लिए और देवों को उद्धार करने एवं सम्पूर्ण विघ्नों को शान्त करने के लिए भी मैने चिन्तना की । दिव्य एक हजार वर्षतक मैने चक्षुओं को मूँदा पश्चात् आखें खोले जाने पर आकुलित मेरे नेत्रों से जल के विन्दुयें गिरे ।।३-७।।

तत्राश्रुबिन्दुतो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः ।
ममाऽऽज्ञया महासेन सर्वेषां हितकाम्यया ।।८।।
बभूबुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः ।
सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादश स्मृताः ।।९।।

उन नेत्र विन्दुओं से महारुद्राक्षों के वृक्ष उत्पन्न हुए हे महासेनानि कुमार मेरी आज्ञा से लोक हित की कामना से वे अडतीस प्रकार के रुद्राक्ष हुए हैं। सूर्य नेत्र (दक्षिण नेत्र) से उत्पन्न हुए कपिल वर्ण रुद्राक्ष द्वादश प्रकार के हैं ।।८-९।।

सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते षोडशविधाः क्रमात् ।
वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दशभेदा भवन्ति हि ।।१०।।

सोम नेत्र (वाम नेत्र) से उत्पन्न रुद्राक्ष सफेद वर्ण के सोलह प्रकार के हैं। इसी प्रकार क्रमिक रूप से वह्नि नेत्र (तृतीय नेत्र) से उत्पन्न रुद्राक्ष काले रङ्ग के दश प्रकार के हैं ।।१०।।

श्वेतवर्णश्च रुद्राक्षो जातितो ब्राह्म उच्यते ।
क्षात्रो रक्तस्तथा मिश्रो वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः ।।११।।

सफेद वर्ण रुद्राक्ष जाति से ब्राह्मण है, रक्त (लाल) वर्ण–रुद्राक्ष क्षत्रीय हैं, और श्वेत और लाल रङ्ग से मिश्रित वर्ण वैश्य जाति है, कृष्ण वर्ण रुद्राक्ष शूद्र कहा जाता है ।।११।।

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
द्विवक्त्रो देवदेव्यौ स्याद्विविधं नाशयेदघम् ।।१२।।

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव हैं ब्रह्महत्या पाप को नाश करते हैं । दो मुखी रुद्राक्ष देव–देवियाँ हैं दो प्रकार के पापों को नाश करते हैं ।।१२।।

त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात् स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ।
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ।।१३।।

तीन मुखी रुद्राक्ष अग्नि देव हैं स्त्री हत्या को नष्ट करते हैं, चतुर्मुखी रुद्राक्ष स्वयम्भू (ब्रह्माजी) हैं नरहत्या को नाश करते हैं ।।१३।।

पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः ।
अभक्ष्यभक्ष्यणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः ।।१४।।
मुच्यते सर्वपापैस्तु पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ।।

पञ्च मुखी रुद्राक्ष स्वयं रुद्र (सर्व दुःख और पापों को नाश

१०४८८८

करने वाले) हैं, उनका नाम कालाग्नि रुद्र है [जो शिव के छटा मुख (अधो मुख) हैं] इसे धारण करने से (द्विजातियों को जो लहसुन, प्याज. छत्राक, विडबराह, गाजा– आदि नखाने को और सुरापान नकरने को कहो गई है) ऐसे अभक्ष्य–भक्षण पान दोष जन्य पापों को दूर करते हैं, परन्तु अभक्ष्य भक्षण अज्ञान से किया हो तो इस वात को भी यहाँ स्मरण रखना होगा। इसी तरह अनजाने में अगम्य में गमन किये पापो को भी दूर करते हैं। एवं जितने पाप हो उन से मुक्ति, पञ्चमुखी रुद्राक्ष धारण से ही मिल जाती है ।।१४।।

षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु स धार्यो दक्षिणे करे ।।१५।।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनङ्गो नाम नामतः ।।१६।।
तद्धारणान्मुच्यते हि स्वर्णस्तेयादिपातकैः ।
अष्टवक्त्रो महासेन साक्षाद्देवो विनायकः ।।१७।।

६ मुखांवाला रुद्राक्ष कार्तिकेय हैं उसे दक्षिण हाथ में धारण करना चाहिए, ऐसा करने से ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्ति मिलती है इस में शक नहीं। सात मुखी रुद्राक्ष महाभाग–कामदेव हैं इसे धारण करने से आदमी स्वर्ण चोरी किया हुआ पापों से मुक्त होता हैं। आठ मुखी रुद्राक्ष साक्षात् विनायक (गणेश जी) हैं। १५–१७।।

अन्नकूटं तूलकूटं स्वर्णकूटं तथैव च ।
दुष्टान्वयस्त्रियं वाऽथ संस्पृशंश्चगुरुस्त्रियम् ।।१८।।

एवमादीनि पापानि हन्ति सर्वाणि धारणात् ।
विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति याति चान्ते परं पदम् ।।१९।।

अन्न राशि, कपास राशि, स्वर्ण राशि, और दुष्ट कुल, स्त्री वा गुरुपत्नी को छूने में जो पाप लगते हैं ऐसे ही अनेक प्रकार के पाप अष्ट मुखी रुद्राक्ष को धारण करने से नष्ट हो जाते हैं । ऐसे भक्त के सारे विघ्न–बाधाएँ नाश हो जाते है और अन्तकालमे परंपदकी प्राप्ति होती हैं ।।१९।।

भवन्त्येते गुणाः सर्वे ह्यष्टवक्त्रस्य धारणात् ।
नववक्त्रो भैरवस्तु धार्येद्वामबाहुने ।।२०।।
भुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत् ।
भ्रूणहत्यासहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च ।।२१।।
सद्यः प्रलयमायान्ति नववक्त्रस्य धारणात् ।

उपर कहे सभी गुण अष्टवक्त्र रुद्राक्ष धारण करने से आ जाते हैं ।

भैरव रूप नववक्त्र रुद्राक्ष को वाम बाहु में धारण करें, यह भुक्ति, मुक्ति देने वाला है इसे धारण करने से मनुष्य मेरे ही समान बलशाली होगा, और नववक्त्र रुद्राक्षको धारण करने से हजारों गर्भपात आदि के पाप और कई सौ ब्रह्म हत्यादि पाप भी सभी नष्ट होते हैं ।।२०–२१।।

दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः ।।२२।।

ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः ।
पन्नगाश्चोपशाम्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात् ॥२३॥

दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् देवाधिदेव भगवान् जनार्दन (विष्णु) हैं, इन्हे धारण करने से नवग्रह, पिशाच, वेताल, ब्रह्म-राक्षस, सर्प सभी शान्त होते हैं ॥२३॥

वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रैकादशकं स्मृतम् ।
शिखायां धारयेद्यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२४॥

एकादश मुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्र स्वरूप हैं, जो इसे धारण करता है उसका पुण्यफल सुनो ॥२४॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥२५॥
तत्फलं लभते शीघ्रं वक्त्रैकादशधारणात् ।

हजार अश्वमेध यज्ञ का और सौ वाजपेय यज्ञका विधिपूर्वक शतसहस्र (१००००) गोदान का जो फल है वह शीघ्र ही एका-दश मुख रुद्राक्ष को धारण करने से प्राप्त होता है ॥२५॥

द्वादशास्यस्य रुद्राक्षस्यैव कर्णे तु धारणात् ॥२६॥
आदित्यास्तोषिता नित्यं द्वादशास्यव्यवस्थिताः ।
गोमेधे वाऽश्वमेधे च यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥२७॥
शृङ्गिणां शस्त्रिणां चैव व्याघ्रादीनां भयं न हि।
न च व्याधिभयं तस्य नैव व्याधिः प्रकीर्तितः ॥२८॥

न च किञ्चिद्भयं तस्य न च व्याधि प्रवर्तते ।
न कृतघ्निद्भयं तस्य सुखी चैवेश्वरो भवेत् ॥२९॥
हस्त्यश्वमृगमार्जारसर्पमूषकदर्दुरान् ।
खराश्वाश्वपृगालांश्च हत्वा बहुविधानपि ॥३०॥
मुच्यते नाऽत्र सन्देहो वक्त्रद्वादशधारणात् ।

द्वादश मुख वाला रुद्राक्ष को कान में धारण करनें से ही द्वादशादित्य अनुकूल हो सन्तुष्ट होते हैं। गोमेध यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ में जो फल मिलता हो वह फल इसे धारण करने से प्राप्त होता है। शृङ्गवाले जनावरों का, शस्त्र धारियों का, और व्याघ्रादि हिंसक पशुओं का भय नहीं होता है किसी प्रकार के आधि-व्याधि भय नहीं होता हैं, कही से भी भय नही होगा, हाथी, घोडा, मृग, बिल्ली, सर्प, चूहे, मेढक, गधा, प्रकारान्तर के घोडे, सियार, आदि पशुओं को वध करके भी द्वादशवक्त्र रुद्राक्ष धारण करने पर उन पापों से मुक्त हुआ करता हैं (जीव) ॥२६-३०॥

वक्त्रत्रयोदशो वत्स ! रुद्राक्षो यदि लभ्यते ॥३१॥
कार्तिकेय समो ज्ञेयः सर्वकामार्थसिद्धिदः ।
रसो रसायनं चैव तस्य सर्वं प्रसिध्यति ॥३२॥
तस्यैव सर्वभोग्यानि नात्र कार्या विचारणा ।
मातरं पितरं चैव भ्रातरं वा निहन्ति यः ॥३३॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात्तस्य षण्मुख ।

हे प्रिय पुत्र कुमार ! यदि त्रयोदश मुखी रुद्राक्ष मिले तो उसे कार्तिकेय के समान ही मानना वह सम्पूर्ण कामनाएँ और सिद्धियों को देने वाला हैं, तेरह मुखी रुद्राक्ष को धारण करने वाले मनुष्यका रस–रसायन आदि सब सिद्ध होते हैं । उसे संपूर्ण भोग्य पदार्थ हो जाते हैं इस में कोही विचार नही लेना चाहिए । जो मनुष्य माता, पिता वा भाइयोंको दुःख–पीडा देता हो, किंवा किसी जन्म में अज्ञान वशात् उनकी हत्या करता हो ऐसे पापों से मनुष्य तेरह मुख–रुद्राक्ष धारण करने से मुक्त हो जाता हैं ।।३१–३३।।

चतुर्दशास्यो रुद्राक्षो यदि लभ्येत पुत्रक ! ।।३४।।
धारयेत्सततं मूर्ध्नि तस्य पिण्डः शिवस्य तु ।
किं मुने बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः ।।३५।।
पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते च परागतिः ।
रुद्राक्ष एकः शिरसा धार्यो भक्त्या द्विजोत्तमैः ।।३६।।

यदि चौदह मुखी रुद्राक्ष मिले तो (हे प्रिय पुत्र !) उसे निरन्तर शिर में धारण करना जो ऐसा करे उसका शरीर शिवका समान हैं ऐसा मानना (इस प्रकार षण्मुख कार्तिकेय को भगवान् ईश्वर (शिव) ने कही हुई वात भगवान् नारायण नारद को सुनाते हुए कहते हैं) हे नारद ! आप को वारम्वार अधिक कहने से वा वर्णन करने से क्या होगा, रुद्राक्ष को धारण करने से निरन्तर देवताओं से आदर और परा गति प्राप्त की जाती हैं । भक्तिपूर्वक एक दाना रुद्राक्ष उत्तम ब्राह्मण को शिरमें अवश्य

धारण करना चाहिए, (द्विज शब्द से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य समझें) ।।३४-३६।।

षड्विंशद्भिः शिरोमाला पञ्चाशद्भृदयेन तु ।
कलाक्षैर्बाहुबलये अर्काक्षैर्मणिबन्धनम् ।।३७।।
अष्टोत्तरशतेनापि पञ्चाशद्भिः षडानन ।
अथवा सप्तविंशत्या कृत्वा रुद्राक्षमालिकाम् ।।३८।।
धारणाद्वा जपाद्वापि ह्यनन्तं फलमश्नुते ।
अष्टोत्तरशतैर्माला रुद्राक्षैर्धार्यते यदि ।।३९।।
क्षणे क्षणेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति षण्मुख ।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ।।४०।।

छबीस दानों की शिरमाला, पचास दानों कि हृदय माला, सोलह-सोलह दानों की बाहुबलय (माला) बारह दानों के (१२-१२) कङ्कन (चूरी)- बनवाकर धारण करे, । एक सौ आठ, पचास, वा सत्ताइस, दानों की माला बनाकर धारण करने से अथवा जप करने से अनन्त फल मिलता है. यदि अष्टोत्तरशत रुद्राक्षों की माला धारण किया जाय तो हे षण्मुख ! उसे क्षण-क्षण में (प्रत्येक दो पलकों में) अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता हैं, इक्कीइस (२१) कुलों का उद्धार कर के शिवलोक में सम्मान प्राप्त करता हैं।

[इसी प्रकार से शिव पुराण में भी रुद्राक्ष
माहात्म्य वर्णन लिखा है]

अब इसके बाद भी देवी पुराणोक्त जप माला लक्षण लिखा जाता हैं इसे जनना उचित समझा जाता हैं।

ईश्वर उवाच ।।

लक्षणं जपमालायाः शृणु वक्ष्यामि षण्मुख ।
रुद्राक्षस्य मुखं ब्रह्मा विन्दु रुद्र इतीरितः ।।१।।

ईश्वर बोले हे षण्मुख ! जपमाला का लक्षण कहूँगा सुनो। (रुद्राक्ष में भावनीय देवता कहते हैं):– रुद्राक्षका मुख ब्रह्मा हैं विन्दुयें रुद्र हैं ।।१।।

विष्णुः पुच्छं भवेच्चैव भोगमोक्षफलप्रदम् ।
पञ्चविंशतिभिश्चाक्षैः पञ्चवक्त्रैः सकण्टकैः ।।२।।

भोग और मोक्ष फल प्रदान करने वाला पुच्छ विष्णु हैं। पच्चीस रुद्राक्ष दानों पञ्चमुखी जो काटों से युक्त हों ।।२।।

रक्तवर्णैः सितैर्मिश्रैः कृतरन्ध्रविदर्भितैः ।
अक्षसूत्रं प्रकर्तव्यं गोपुच्छबलयाकृतिः ।।३।।

लालवर्ण, सफेद वर्ण, और मिश्रितवर्ण के ग्रथित हुए, (विना टुटे) रुद्राक्षों से गोपुच्छवलयाकृति– माला वनावें ।।३।।

वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् ।
मेरूमूर्ध्वमुखं कुर्यात् तदूर्ध्वं नागपाशकम् ।।४।।

एवं संग्रथितां मालां मन्त्रसिद्धिप्रदायिनीम् ।
प्रक्षाल्य गन्धतोयेन पञ्चगव्येन चोपरि ॥५॥
ततः शिवांभसाऽऽक्षाल्य ततो मन्त्रगणान्न्यसेत् ।
स्पृष्ट्वा शिवास्त्रमन्त्रेण कवचेनाऽवगुण्ठयेत् ॥६॥
मूलमन्त्रं न्यसेत्पश्चात्पूर्ववत्कारयेत्तथा ।
सद्यो जातादिभिः प्रोक्ष्य यावदष्टोत्तरं शतम् ॥७॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य शुद्धभूमौ निधाय च ।
तस्योपरि न्यसेत्साम्बं शिवं परमकारणम् ॥८॥
प्रतिष्ठिता भवेन्माला सर्वकामफलप्रदा ।

मुख मुख से सटा कर पुच्छ पुच्छ से मिला दे, ग्रन्थिरूप मेरूको ऊर्ध्व मुख करें (गोपुच्छ) इस प्रकार ग्रन्थित माला सर्वकामना को देने वाली होती है इसे शुद्ध जल से धोकर पञ्च-गव्य चन्दन, जल से पवित्र करके उसके वाद मन्त्रों से शुद्ध करें, छू कर षडङ्ग शिवास्त्र मन्त्र बोलें, कवच मन्त्र (हुम्) वोलकर अवगुण्ठन (एकत्रीकरण) करें मूलमन्त्र से मन्त्रित कर फिर से पूर्ववत्करें वा (करवाएँ) सद्याजातादि मन्त्रो मे प्रोक्षण कर के (१०८ वार) मूल मन्त्रोच्चारण पूर्वक शुद्ध जमीन पर रख कर उसके उपर उमा सहित शिव को भावित करें, ऐसा करने से माला प्रतिष्ठित होती हैं तभी सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली बनती हैं ॥४–८॥

दानोंका परिमाण, रुद्राक्ष दर्शन स्पर्शन और धारण से पुण्य:-

लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत् ।
तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥९॥
लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ।
तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात् ॥१०॥
रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षं धारणात्स्यान्महाफलम् ।
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ॥११॥
बदरीफलमात्रं तु प्रोच्यते मध्यमं बुधैः ।
अधमं चणमात्रं स्यात्प्रतिज्ञैषा मयोदिता ॥१२॥
(दे. भा. ११।७।४-७)

लक्ष संख्या पुण्य दर्शन से कोटि गुणा पुण्य स्पर्शमात्र से और उसे धारण करने से उससे भी कोटि गुणा पुण्य होता हैं। लक्षकोटि सहस्र और लक्षकोटि सौ गुणा उस से जप करने से पुण्य होता हैं, और धारण करने से भी। रुद्राक्षों की अभाव में उसके भद्राक्ष धारण करने से भी महाफल प्राप्त होता हैं। रुद्राक्षों का परिमाण-आँवलेका दाना बराबर का उत्तम, बयर का फल बराबर का दाना मध्यम, और चनेका दाना बराबर का दाना अधम माना जाता हैं यह मेरी- (नारायण की नहीं शिवकी) प्रतिज्ञा हैं ॥९-१२॥

रुद्राक्ष जाति और उनका पहिचान

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया ।
वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ।।१३।।
श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः ।
पीता वैश्यास्तु विज्ञेया कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्तिता ।।१४।

भगवान् शिव की आज्ञा से पृथ्वी में ब्राह्मण जातीय क्षत्रिय जातीय, वैश्य जातीय– और शूद्र जातीय (अर्थात् सत्व गुण प्रधान रजोगुण प्रधान तमो गुण प्रधान तथा गुण सांकर्य वाले) रुद्राक्ष उत्पन्न हुए हैं। उन के पहिचान हैं श्वेतवर्ण ब्राह्मण जातीय, (सत्वगुण प्रधान) रक्त वर्ण के क्षत्रीय जातीय (रजोगुण प्रधान) पीतवर्ण वैश्य जातीय (तमोगुण प्रधान) काले शूद्र जातीय (मिश्र गुण प्रधान) रुद्राक्ष हैं ।।१३–१४।।

ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान् रक्तान् राजा तु धारयेत् ।
पीतान् वैश्यस्तु विशृयात्कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ।।१५।।
समाः स्निग्धा दृढास्तद्वत्कंटकैः संयुताः शुभाः ।
कृमिदष्टाञ्छिन्नभिन्नान्कंटकै रहितां स्तथा ।।१६।।
व्रणयुक्तानावृतांश्च षड् रुद्राक्षांस्तु वर्जयेत् ।
स्वयमेव कृतद्वारो रुद्राक्षः स्यादिहोत्तमः ।।१७।।

ब्राह्मण श्वेतवर्ण रुद्राक्षों को धारण करे क्षत्रिय रक्त वर्ण के रुद्राक्षों को धारण करे पीले दानों को वैश्य धारण करे, काले वर्ण रुद्राक्षों को शूद्र जातीय लोग धारण करे। उनमे से समान रूप से मिले स्निग्ध बलिष्ठ और काटों से युक्त शुभ है। कीडे ने खाया काटों से छिन्न भिन्न (जिस में काटे टुटे हों) चोट लगी, एवं किसी वस्तु से घेर लिया हो या जोडा गया हो इसप्रकार के रुद्राक्षों को नहीं लेना चाहिए। आप से आप बना छिद्र वाला रुद्राक्ष उत्तम है ।।१५-१७।।

विभिन्न मुखी रुद्राक्ष एवं उनके देवता:-

एकवक्त्रस्तु रुद्राक्षः परतत्वप्रकाशकः ।
परतत्वधारणाच्च जायते तत्प्रकाशनम् ।।१८।।

एक मुखी परतत्त्व प्रकाशक है उसे धारण करने से उस तत्व अर्थात् परब्रह्म ज्ञान होता है ।।१८।।

द्विवक्त्रस्तु मुनिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो भवेत् ।
धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ।।१९।।

हे मुनि वर ! दो मुखी रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर का स्वरूप है उसे धारण करने से अर्धनारीश्वर (उमाशंकर) उस से नित्य प्रसन्न रहते हैं ।।१९।।

त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात् स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ।
त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः ।।२०।।
तद्धारणाच्च हुतभुक् तस्य तुष्यति नित्यशः ।
चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामह स्वरूपकः ।।२१।।
तद्धारणान्महाश्रीमान् महदारोग्य मुत्तमम् ।
महती ज्ञानसंपत्तिः शुद्धये धारयेन्नरः ।।२२।।

तीन मुखी रुद्राक्ष प्रत्यक्ष अग्नि देव हैं। यह स्त्री हत्याजन्य पाप को तत्क्षण नष्ट करते, और यह तीन मुख रुद्राक्ष, अग्नित्रय-(गार्हपत्य,आहवनीय, दक्षिण) स्वरूप भी हैं उसे धारण करने से और अग्नि में हवन करने से, औ उसे पहन कर भोजन करने से भी अग्नि देव प्रसन्न रहा करते हैं। चार मुखी रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माजो का स्वरूप है उसे धारण करने से अति धनाढच, उत्तम आरोग्य, महान् ज्ञान, और सम्पत्ति होते हैं उनकी शुद्धि के लिए मानव इसे धारण किया करें ।।२०-२२।।

पञ्चमुखस्तु रुद्राक्षः पञ्चब्रह्मस्वरूपकः ।
तस्य धारणमात्रेण संतुष्यति महेश्वरः ।।२३।।

पञ्च मुख रुद्राक्ष पञ्च ब्रह्म स्वरूप हैं, इसके धारण मात्र से भगवान् महेश्वर प्रसन्न हाते है ।।२३।।

षड्वक्त्रश्चैव रुद्राक्षः कार्तिकेयाधिदैवतः ।
त्रिनायकं चापि दैवं प्रवदन्ति मनीषिणः । २४।।

६ मुख रुद्राक्ष कार्तिकेय का स्वरूप है, उसे धारण करने से कार्तिकेय प्रसन्न रहते हैं, उसे विनायक कहकर विद्वान् लोग-मानते हैं इसे पहनने से गजानन भी प्रसन्न रहते हैं ।।२४।।

सप्तवक्त्रस्तु रुद्राक्षः सप्तमात्राधिदैवतः ।
सप्ताश्वदैवतश्चैव मुनिसप्तकदैवतः ।।२५।।
तद्धारणान्महाश्रीःस्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ।
महती ज्ञानसंपत्तिः शुचिर्वै धारयेन्नरः ।।२६।।

सात मुख रुद्राक्ष सप्तमात्राधिदेवत है उसे धारण करने से सप्त माताएँ (सप्तस्वरों की अधिष्ठात्री देवीयाँ) प्रसन्न रहती हैं। सप्ताश्व (सूर्य) देव और सप्त ऋषीश्वर के अधिदेव भी हैं उसे धारण करने से सूर्य देव और ऋषीश्वर प्रसन्न रहते हैं महान् ज्ञान संपत्ति, और पवित्रता मिलती हैं अतः मानव इसे धारण करें ।।२५-२६।।

अष्टवक्त्रस्तु रुद्राक्षोऽप्यष्टमात्राधिदैवतः ।
वस्वष्टकः प्रीतिकरो गङ्गाप्रीतिकरः शुभः ।।
तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः ।।२७।।

आठ मुख रुद्राक्ष अष्ट मात्रिकाओं की अधिष्ठात्री देवता हैं, अष्टवसुओं और गङ्गा को प्रसन्न करने वाला भी है उसे धारण करने से वे सब प्रसन्न रहते हैं ।।२७।।

नववक्त्रस्तु रुद्राक्षो यमदेव उदाहृतः ।
तद्धारणाद् यमभयं न भवत्येव सर्वथा ।।२८।।

नौ मुखी रुद्राक्ष को यम देव कहा गया है उसे धारण करने से सर्वथा यम भय नहीं होता है ।।२८।।

दशवक्त्रस्तु रुद्राक्षो दशाशादैवतः स्मृतः ।
दशाशाप्रीतिजनको धारणे नात्र संशयः ।।२९।।

दश मुख रुद्राक्ष दश दिशाओंके अधिष्ठाता देवता है इसे धारण करने से दशदिशाएँ और लोकपाल प्रसन्न रहते हैं इसमें शक नही ।।२९।।

एकादशमुखस्त्वक्षो रुद्रैकादशदैवतः ।
तस्मिन्द्रदैवतं चाहुः सदा सौख्यविवर्धनम् ।।३०।।

ग्यारह मुख रुद्राक्ष एकादश रुद्र देव हैं उसे इन्द्र देवता भी माना गया है उसे धारण करने से सुख भाव की वृद्धि होती हैं ।।३०।।

रुद्राक्षो द्वादशमुखो महाविष्णुस्वरूपकः ।
द्वादशादित्यदैवश्च बिभर्त्येव हि तत्परः ।।३१।।

द्वादश मुख रुद्राक्ष महाविष्णु (परब्रह्म) और आदित्य देव हैं वे भी इसे धारण करते है अतः कल्याणकांक्षी जन इसे पहनें ।।३१।।

त्रयोदशमुखश्चाक्षः कामदः सिद्धिदः शुभः ।
तस्य धारणमात्रेण कामदेव प्रसीदति ।।३२।।

त्रयोदश मुख रुद्राक्ष शुभकर, इच्छासिद्धि करने वाला और सिद्धि प्रदान करने वाला है उसे धारण करने मात्र से कामदेव प्रसन्न रहते हैं ।।३२।।

चतुर्दशमुखश्चाक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः ।
सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः ।।३३।।

रुद्र के नेत्रों से उत्पन्न चौदह मुख रुद्राक्ष संपूर्ण रोगों को दूर करने वाला और सर्वप्रकार का आरोग्य प्रदान करने वाला हैं ।।३३।।

रुद्राक्षोंको धारण करनेके वाद त्याज्य वस्तुएँ–

मद्यं मांसं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च ।
श्लेष्मान्तकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ।।

रुद्राक्ष धारण करने क वाद मदिरा, मांस, लशुन, प्याज, सोइजन,– श्लेष्मान्तक (यह खट्टा फल हिमाली प्रदेश में ही होता है इसे नेपाली में लप्सी कहते है यह कफनाशक दवा भी है) ग्राम सूँअर ये सब नखावें, खाएँ तो फल नहीं मिलता है इसका तात्पर्यार्थ को समझ लेना चाहिए।

नित्य रुद्राक्ष धारण न कर सके तो विशेष दिनों मे अवश्य धारण करें-

ग्रहणे विषुवे चैव संक्रमे अयने तथा ।
दर्शे च पौर्णमासे च पुण्ये च दिवसेष्वपि ।।
रुद्राक्षधारणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

चन्द्र सूर्य ग्रहण में जिस समय सूर्य विषुवत् रेखापर पहुंचे (२१ मार्च, तथा २१ सितम्बर के दिन), संक्रान्ति, उत्तरायण, दक्षिणायन के अयन संक्रान्ति, अमावास्या, पौर्णमासी और एकादशी, शिवरात्री, आदि पुण्य दिनों में भी रुद्राक्ष धारण करने से तुरन्त ही पापों से मुक्ति मिलती है ।

तुलसीमाहात्म्यं
शालग्राममाहात्म्यं च

जब शंखचूड नामको बलवान् दानव ने सारे देवताओं को दुःख दिया तब देवताओं के कार्य–साधन के लिए भगवान् विष्णु अपनी मायाद्वारा शंखचूडका कवच धारणकर उसकी स्त्री सती की सतीत्व नाश करने गए क्यों कि उसकी सतीत्व धर्म के प्रभाव से ही शंखचूड अजेय था। भगवान् नारायण जब शंखचूड की पत्नीका पातिव्रत्य को नष्ट किये तब सती तुलसी को भेद मालुम हुआ और बोली:–

हे नाथ ! ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च।
छलेन धर्म धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः ।।१।।
पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो ! ।
तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवदेव भवाऽधुना ।।२।।
ये वदन्ति च साधुं त्वां ते भ्रान्ता हि न संशयः ।
भक्तो विनाऽपराधेन पराऽर्थे च कथं हतः ।।३।।

हे नाथ पाषाण सदृश तुम में दया नहीं है तुम ने छल कर के मेरी धर्म को नष्ट किया और मेरे पति देव को मारा इस लिए तुम पाषाण हृदय हो, दयाहीन हो, अतः तुम को पाषाणरूप होना चाहिए अभी पाषाण बन जाओ। जो लोग तुम्हें साधु कहते है वे भ्रान्ति से कहते हैं। यदि तुम साधु होते तो निरपराध भक्त को दूसरों के लिए क्यो मारते ? । इत्यादि वचन बोलती हुई बहुत विलाप करती, छाती पीट-पीटकर रोने लगी ।।१–३।।

तब भगवान् बोले–

तपस्त्वया कृतं भद्रे मदर्थे भारते चिरम् ।
त्वदर्थे शंखचूडश्च चकार सुचिरं तपः ।।४।।
कृत्वा त्वां कामिनीं सोऽपि विजहार च तत्क्षणात् ।
अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ।।५।।

हे सौम्यमूर्ति तुलसी! तुम ने मुझे पाने के लिए भारत वर्ष में चिरकाल तक तपस्या की और तुमको पाने के हेतु शङ्खचूड ने भी बहुत दिन तक तपस्या किया और तुम्हें पाकर उसी समय से उस ने तुह्मारे साथ विहार किया अब तुह्मारी तप का फल देना उचित होगा ।।४–५।।

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च ।
रामे रम मया सार्धं त्वं रमा सदृशी भव ।।६।।

हे रामे! इस शरीर को त्यागकर दिव्य देह बनाकर के मेरे साथ रमण कर तू रमा सदृशी होजा ।।६।।

इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता ।
पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते ।।७।।
तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति ।
तुलसीकेशसंभूता तुलसीति च विश्रुता ।।८।।

तुम्हारा यह शरीर भारत में मनुष्यो के लिए पवित्र, पुण्य देने वाला गण्डकी नाम से प्रसिद्ध नदीरूप हो, तुमारे केश समूह पुण्य (पवित्र) वृक्ष होगें और तुलसी के केश से उत्पन्न होने से तुलसी नाम से प्रसिद्ध होओगी ।।७-८।।

त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने ।
प्रधानरूपा तुलसी भविष्यसि वरानने ।।९।।

स्वर्ग मर्त्य पाताल तीनों लोकों में पुष्प और पत्रों के मध्य में तुम तुलसी प्रधान रूपा होओगी ।।९।।

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम सन्निधौ ।
भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी ।।१०।।

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल और मेरे समीप गोलोक में तुम उत्तम वृक्षरूप पुष्पों मे श्रेष्ठ तुलसी होना ।।१०।।

गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने वने ।
भाण्डारे चंपकवने रम्ये चन्दनकानने ।।११।।

माधवी केतकी कुन्दमालिका मालती वने ।
वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः ।।१२।।

गोलोक में, विरजावन में, रास में, वृन्दावन में, भण्डार में चम्पक वन में, सुन्दर चन्दन वन में, माधवी-केतकी-कुन्दमालिका-मालती आदि के पुष्प वन में और पुण्यस्थानों में पुण्य देश- (पाशुपतादि क्षेत्र) में तुलसीवृक्ष मूल में तुमारी वास होने से सारे तीर्थों का वास होगा, इसलिए तुम उन स्थानों में निवास करो ।।११-१२।।

तुलसीतरुमूलेषु पुण्यदेशेषु पुण्यदम् ।
अधिष्ठानं च तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति ।।१३।।
तत्रैव सर्वदेवानां ममाऽधिष्ठानमेव च ।
तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने ।।१४।।

हे श्रेष्ठ मुखाकृति तुलसी ! उन स्थानों पर सब देव-देवता और मेरा निवासस्थान होगा जहां तुलसी वृक्ष हो वह निवास तुलसी-पत्र पतन प्राप्ति हेतुक समझना ।।१३-१४।।

सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ।।१५।।

जो मनुष्य वा देव देवता तुलसी पत्र के जल से अभिषिक्त हो, उस ने स्नान किया और सारे यज्ञों में दीक्षा ग्रहण किया ऐसा समझना ।।१५।.

सुधाघटसहस्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः ।
सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः ।।१६।।

हजार अमृत घडा सर्मपित होने से जो तुष्टि भगवान् हरि को होती हो वह सन्तुष्टि तुलसीपत्र प्रदान से अवश्य होगी ।१६।

गवामयुतदानेन यत्फलं तत्फलं भवेत् ।
तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्तिके सति ।।१७।।

कार्तिक महिने में अयुत गोदान करने से जो पुण्य प्राप्त होता हैं वह पुण्य-फल कार्तिक मास में तुलसी पत्र प्रदान करने से मिलता है ।।१७।।

तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ।।१८।।

मृत्युकाल में जिसे तुलसी पत्र जल मिले वह संपूर्ण पापों से मुक्त होता है और अन्त में विष्णुलोक में आदर पाता है ।।१८।।

नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङक्ते भक्त्या च मानवः ।
लक्षाश्वमेधजं पुण्यं संप्राप्नोति स मानवः ।।१९।।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक तुलसी जल नित्य पान करता है वा भोजन में तुलसीपत्र छोडकर भोजन करता हैं वह मनुष्य लक्ष अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता हैं ।।१९।।

तुलसी स्वकरे कृत्वा धृत्वा देहे च मानवः ।
प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ।।२०।।

तुलसी पत्र अपने हाथ में किंवा अपने देह में रखकर जो तीर्थ में जाकर प्राण को त्याग देता है वह विष्णुलोक (वैकुण्ठ धाम) में प्राप्त होता है ।।२०।।

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ।।२१।।

तुलसी का काष्ठ से निर्मित माला को जो हाथ में लेता हैं वह आदमी पग पग में अश्वमेध यज्ञ का फल को अवश्य प्राप्त कर लेता है ।।२१।।

तुलसीं स्वकरे कृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति ।
स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।२२।।

तुलसी को अपने हाथ में लेकर जो आदमी अपनी कृत्य को सुरक्षित नहीं करता (सत्य-पालन नहीं करता) वह जबतक चन्द्र-सूर्य रहे तवतक- काल पाश में फस जाता हैं ।।२२।।

करोति मिथ्याशपथं तुलस्यां योऽत्र मानवः ।
स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।२३।।

जो मनुष्य तुलसी को लेकर मिथ्या बोलता हैं वह चौदह इन्द्र रहेतक कुम्भीपाक नामक नरक में जाता है ।।२३।।

तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत् ।
रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठे प्राप्यते ध्रुवम् ।।२४।।

मृत्यु काल में जो तुलसी जलका छींटा भी पाए वह रत्न यान में बैठकर वैकुण्ठ धाम को जाता है यह निश्चित है ।।२४।।

पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे ।
तैलाभ्यंगं च कृत्वा च मध्याह्ने निशिसंध्ययोः ।।२५।।
आशौचेऽशुचि काले ये रात्रिवासोन्वता नराः ।
तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरे शिरः ।।२६।।

पूर्णिमा के दिन, अमावास्या के दिन, द्वादशी के दिन, संक्रान्ति के दिन, तेल लगाकर, मध्याह्न समय में, सायंकालों में, रात्रि में और आशौच में अपवित्रावस्था में एवं रात्रि में लगाए कपडे पहन कर जो तुलसी पत्र को तोडता है वह भगवान्का शिर तोडता हैं ।।२५-२६।।

त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति ।
श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने ।।२७।।
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति ।
शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ।।२८।।

तीन रात तक बासी रहा तुलसी पत्र, श्राद्ध में, व्रत में, दान में, प्रतिष्ठा कर्म में, और देवता पूजामे पवित्र माना जाता हैं । जमीनपर गिरा तुलसी, जल में पडा तुलसी, और विष्णु

भगवान् को चढाया हुआ तुलसीपत्र, फिर से धो कर और कर्म में पवित्र मान कर चढाया जा सकता हैं ।।२७-२८।।

वृक्षाऽधिष्ठातृदेवी या गोलोके च निरामये ।
कृष्णेन सार्धं नित्यं च नित्यं क्रीडा करिष्यसि ।।२९।।

हे वृक्षों की अधिष्ठातृ देवी तुम गोलोक में कृष्ण के साथ नित्य होने से नित्य क्रीडा करोगी ।।२९।।

नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा ।
लवणोदस्य सा पत्नी मदंशस्य भविष्यति ।।३०।।

जो तुम नदीयों की अधिष्ठातृ देवी हो, भारत में सुपुण्य देने वाली हो और लवणोदकी समुद्रकी पत्नी जो हो सो मेरे अंश की होगी ।।३०।।

त्वं च स्वयं महासाध्वी वैकुण्ठे मम सन्निधौ ।
रमा समा च रामा च भविष्यसि नसंशयः ।।३१।।

तूँ स्वयं महापतिव्रता हो तुम मेरे पास रमा के समान रामा हो कर, रहेगी इस में संशय नहीं है ।।३१।।

अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ।।३२।।

पहाड रूपसे गण्डकी नदी के तीर नजदीक भारत में तुह्मारी शाप ही से मैं निवास करूँगा ।।३२।।

कोटिसंख्यास्तत्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रावरायुधैः ।
तच्छिला कुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ।।३३।।

उस शिखर पर अच्छे और श्रेष्ठ आयुधों से युक्त कोटिशः संख्या में तोक्ष्ण दंष्ट कीडे रहते हुए उन शिला को छेदकर उन छेदों में मेरा चक्र को अङ्कित करेंगे वे (शालग्राम) नानाविध चक्राकार, और चिह्नों के होगे ।।३३।।

शालग्राम-में चिह्न (लक्षण) और उनके नामः-

एकद्वारं चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम् ।
नवीननीरदाकारं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ।।३४।।

एक छिद्र होकर चार चक्र होते हुए शिला उपर मालाकार रेखावाल काले रङ्गका शालग्राम को लक्ष्मीनारायण कहा जाता हैं ।।३४।।

एकद्वारं चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम् ।
लक्ष्मीजनार्दनो ज्ञेयो रहितो वनमालया ।।३५।।

एकछिद्र में चार चक्र होते हुए नवीन मेघ के समान काले रङ्ग के वनमाला से रहित शालग्राम को लक्ष्मीजनार्दन कहाजाता हैं। ।।३५।।

द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन विराजितम् ।
रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥३६॥

दो छिद्रों में गोष्पद (गौका पदचिन्ह) से सुशोभित, वनमाला से रहित शालग्रामको रघुनाथ नाम के जानें ॥३६॥

अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम् ।
तद्वामनाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥३७॥

अति छोटा और दो चक्र वाले नवीन मेघ के सदृश कान्ति जिस शालग्राम की हो और वनमाला न हो तो उसे वामना नामका जानना ॥३७॥

अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च वनमालाविभूषितम् ।
विज्ञेयं श्रीधरं रूपं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ॥३८॥

अति छोटा होता हुआ दोचक्र होकर वनमाला से विभूषित शालग्राम को गृहस्थियों के लिए ऐश्वर्य देनेवाला श्रीधररूप जानें ॥३८॥

स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया ।
द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥३९॥

बडा होते हुए वनमाला से रहित दो चक्र वाला अत्यन्त विकसित शालग्राम को दामोदर नाम का जानना ॥३९॥

मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम् ।
रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम् ॥४०॥

(अधिक छोटा भी न हो अधिक बडा भी नहोकर) मध्यम आकार–प्रकार का दो चक्र वाला और वाण से युक्त नटूटा शर (बाण) और तूण (जिस में बाण रख पीछे ढोया जाता है ऐसा पात्र) से युक्त शालग्राम को रणराम नाम से पहचानें ॥४०॥

मध्यमं सप्तचक्रं च छत्रभूषणभूषितम् ।
राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसंपत्प्रदं नृणाम् ॥४१॥

मध्यम आकार का सात चक्रों से युक्त छत्र औ आभूषणों से विभूषित मनुष्यों को राज संपत्ति प्रदान करने वाले शालग्राम को राजराजेश्वर नाम से पहचानें ॥४१॥

द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवनीरदसुप्रभम् ।
अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥४२॥

चौदह चक्रों से युक्त बडे आकार का औ नवीन मेघके समान काले रङ्ग से सुदीप्त शालग्राम को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-(चतुवर्ग) फल प्रदान करने वाले अनन्त (जिस का अन्त नही जाना जासकता है) किंवा वैसा ही अनन्त वासुकि नागराज, किंवा भगवान् महाविष्णु स्वरूप जानें ॥४२॥

चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम् ।
सगोष्पदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम् ॥४३॥

चक्राकार होते हुए वामाङ्क में लक्ष्मी चिह्न से युक्त मेघ के समान काली कान्ति वाला गोष्पद (गौ के पाद चिह्न) जिस में कुछ गहरा भाग भी हो, मध्यम परिमाण अर्थात् न छोटा न बडा शालग्राम को मधुसूदन नाम से पूजें और पहचानें ।।४३।।

सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम् ।
द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम् ।।४४।।

एकचक्र वाले को सुदर्शन नाम से जानना, गुप्त चक्र वाले को गदाधर नाम का जानना और दोचक्र होकर घोडोंका मुखाकृति वाला शालग्राम को हयग्रीव नाम का जानना ।।४४।।

अतीव विस्तृताऽऽस्यं च द्विचक्रं विकटं सति ।
नरसिंहं सुविज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम् ।।४५।।

अत्यन्त विस्तृत (फैला हुआ) मुखद्वार होता हुआ दोचक्र और भयंकर रहे तो उसे तुरन्त ही वैराग्य प्रदान करने वाला नरसिंहरूप शालग्राम कहें वा जानें ।।४५।।

द्विचक्रं विस्तृताऽऽस्यं च वनमालासमन्वितम् ।
लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम् ।।४६।।

दो चक्र होते हुए जिसका मुह फैला हो, और वनमाला से युक्त शालग्रामको गृहस्थि जनों के लिए सुख प्रदान करने वाला लक्ष्मीनृसिंह स्वरूप जानें ।।४६।।

द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम् ।
वासुदेवं तु विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ।।४७।।

द्वारदेश स्थान ही में (मध्य में नही) दोचक्र होकर वामाङ्कमें लक्ष्मी का चिह्न से सुशोभित अलग-अलग मुह हुआ वह भी सुस्पष्ट हों तो उसे सभी कामनाओं को सिद्धकर फल प्रदान करने वाले वासुदेव का स्वरूप जानें ।।४७।।

प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम् ।
सुशिरच्छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम् ।।४८।।

महामुख के अन्त (भीतर) अधिक सूक्ष्म चक्र हों, और-नवीन मेघकी समान काला कान्ति हो तो उसे गृहस्थियों के लिए सुख प्रदान करने वाला प्रद्युम्न नामका (भगवानका स्वरूप) जानना ।।४८।।

द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठं यत्र तु पुष्कलम् ।
संकर्षणं सुविज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा ।।४९।।

दोनों चक्रों के मुख परस्पर सटे हुए चक्रोंके पृष्ठ भाग विशाल रूप हो तो उसे सदा गृहस्थियों को सुख प्रदान करने वाले संकर्षण भगवान्का स्वरूप जानना ।।४९।।

अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चाऽतिशोभनम् ।
सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः ।।५०।।

वर्तुलाकार पीलावर्ण और अति सुन्दर शालग्रामको बुद्धिमान् जन सब (विद्वान लोग) गृहस्थों के लिए सुख प्रदान करने वाला अनिरूद्ध नामका (शालग्राम) भगवान् का स्वरूप कहते हैं। इसीप्रकार से देवी भागवत के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त महापुराण विष्णुधर्मोत्तर महापुराण आदि कई पुराणों में नेपाल मण्डल गण्डकी तीरवर्ति शिला शैल को शालग्राम भगवान् को स्वरूप चिह्न का लक्षणादि वर्णन और पूजन-फल माहात्म्य लिखे मिलते हैं अतः इस स्थलपर-"प्रवदन्ति मनीषिणः" कहना समुचित ही हैं ।।५०।।

जहाँपर शालग्राम शिला वहाँ भगवान्, लक्ष्मीपति, लक्ष्मी और सारे प्रयागादि तीर्थ रहते हैं लिखा हैं:-

शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता ।।५१।।

जहाँ पर शालग्राम शिला हैं वहाँ भगवान् हरि प्रत्यक्ष रहा करते हैं, और उस स्थान पर सब तीर्थ सहित लक्ष्मी विराजमान होती हैं ।।५१।।

शालग्राम पूजा से सब प्रकारका पापनाशः-

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्रामशिलार्चने ।।५२।।

ब्रह्महत्यादि जितने भी पाप हुआ करते है वे सब शालग्राम शिला (प्रत्यक्ष देवता) पूजन करने से नष्ट हो जाते हैं ।।५२।।

छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः ।
दुःखं च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ।।५३।।

छाता के आकार वाला शालग्राम पूजन से राज-सुख, वर्तुलाकार शालग्राम पूजने से महति सम्पत्ति, शकट (रथ) के आकार का शालग्राम पूजन से दुःख, और शूलाकार शालग्राम पूजन से शीघ्र मृत्यु होता है यह निश्चित जानना चाहिए ।।५३।।

विकृताऽऽस्ये च दारिद्र्यं पिंगले हानिरेव च ।
भग्नचक्रे भवेद् व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ।।५४।।

विकृत अर्थात् टुटे-फुटे वा विरूपाकृति मुख वाला शालग्राम पूजने से द्रारिद्र्य, (तृष्णा बढा ही किया करती हैं हटती नहीं) पिङ्गल वर्णका शालग्राम पूजने से हानि ही हुवा करती लाभ कभी भी नहीं। चक्र टूटे हुए शालग्राम पूजने से व्याधि (रोग) होते है और फुटे टूटे शालग्राम पूजने से शीघ्र मरण वा अल्पायु होता है यह सत्य समझना चाहिए ।।५४।।

व्रतदानं प्रतिष्ठां च श्राद्धं च देवपूजनम् ।
शालग्रामस्य सान्निध्यात्प्रशस्तं तद्धि वेदिति ।।५५।।

शालग्राम के सन्निधि में व्रत, दान, देवताओं की प्रतिष्ठा, श्राद्ध, और देवता पूजन करने से वह उत्तमोत्तम होता है। शालग्राम को प्रतिष्ठा नही करनी पडती है क्यों कि वह प्रत्यक्ष देव हैं।।५५।।

सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेषु च तपःसु च ॥५६॥
पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति ।
तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ॥५७॥

जिसने शालग्राम को पूजा हैं उसने सब तीर्थका स्नान किया, सब यज्ञ में दीक्षित हुआ, समझना चाहिए। सम्पूर्ण यज्ञो के करने में, सम्पूर्ण तीर्थ स्नान करने में, सम्पूर्ण व्रत कर लेने में और तपस्या करने में एवं चारों वेदोंका पाठ कर तपस्या करने में जो पुण्य होता है वह पुण्य शालग्राम पूजने से हो जाता है ॥५६-५७॥

शालग्रामशिलातोये योऽभिषेकं सदा चरेत् ।
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रदक्षिणंभुवो यथा ॥५८॥

शालग्राम के जल से जो अभिषेक नित्य किया करता है उसे सम्पूर्ण प्रकार के दानों और पृथ्वी परिक्रमा करने से जो पुण्य फल है सो मिल जाते हैं ॥५८॥

शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः ।
सुरेप्सितं च प्रसादं लभते नात्र संशयः ॥५९॥

जो मनुष्य नित्य शालग्राम का जल पान किया करता है, वह देवताओं ने इच्छित प्रसन्नता को प्राप्त करता है इसमे शक नहीं ॥५९॥

तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च ।
जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ।।६०।।

वैसा मनुष्य को स्पर्श करने की इच्छाए सर्व तीर्थ किया करते हैं । वैसा मनुष्य जीवन्मुक्त, अतिपवित्र, होता हुआ अन्त काल में हरिका पद (वैकुण्ठ धाम) को प्राप्त होता है ।।६०।।

तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतालयम् ।
यास्यत्येव हि दास्ये च नियुक्तो दास्यकर्मणि ।।६१।।

वहीं (वैकुण्ठ में) हरि के साथ असंख्य प्राकृत भवन में रह कर भगवान् का दास्य कर्म में (सेवा में) नियुक्त होता है ।६१।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
तं दृष्ट्वा च पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः ।।६२।।

ब्रह्म हत्या के समान जितने उग्र पाप होते हैं वे सब उसे देखकर गडुप पक्षी को देखकर सर्प जैसे भागते है वैसा ही भाग जाते हैं ठहरते नहीं ।।६२।।

तत्पादरजसा देवी सद्यपूता वसुन्धरा ।
पुंसां लक्षं तत्पितृणां निस्तरेत्तस्य जन्मतः ।।६३।।

उस के पाउ के धूली से पृथ्वी तत्काल पवित्र होती हैं, और पुंस्त्वका लक्ष होता हैं पितरों को निस्तार करना वह वैसा मनुष्य के जन्म से हो ही जाता ,।।६३।।

शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं च गच्छति ।।६४।।

जो मनुष्य मृत्युकाल में शालग्राम का जल पीता है (उसे जल मिल जाता है) वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ।।६४।।

निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगात्प्रमुच्यते ।
विष्णोः पदे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ।।६५।।

वह निर्वाण मुक्ति को प्राप्त होता हैं, कर्म भोगों से छुट जाता है (उन भोगों को उसे भोगने नहीं पडते) एवं भगवान् विष्णु के पदों में लीन होता है, इसमे शङ्का नहीं ।।६५।।

शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावाक्यं वदेत्तु यः ।
स याति कुम्भीपाके च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ।।६६।।

शालग्राम शिला प्रत्यक्ष देवता हैं उसे छुकर जो व्यक्ति मिथ्या वाक्य वोला करता है वह ब्रह्मका उम्रतक कुम्भीपाक नरक में पड जाता है ।।६६।।

शालग्रामशिलां धृत्वा स्वीकारं यो न पालयेत् ।
स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तरावधि ।।६७।।

शालग्राम शिला को लेकर (उसे प्रत्यक्ष देवता जानता हुआ भी) अपने से स्वीकारा गया कर्म जो नहीं करता वह एक लाख मन्वन्तर के अवधि तक असिपत्र नामक नरक में (तलवार के समान जहां के पौधों का पत्र हुआ करते वहां) प्राप्त होता है ।।६७।।

तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः ।
तस्य जन्मान्तरे कान्ते स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ।।६८।।

जो मनुष्य शालग्राम में तुलसी पत्र विना पूजा करता उसके जन्मान्तरों में स्त्री विच्छेद होता है (कई जन्मतक उसे स्त्री नहीं मिलती) ।।६८।।

तुलसीपत्रविच्छेदं शंखे यो हि करोति च ।
भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु ।।६९।।

वैसा ही, जो मनुष्य शंख को तुलसीपत्र के विना ही रखता है, वह भी पत्नीहीन होता है और सात जन्मतक रोगी होता है ।।६९।।

शालग्रामं च तुलसीं शंखं चैकत्रमेव च ।
यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः ।।७०।।

(देवीभागवत)

जो मनुष्य शालग्राम और तुलसी, शङ्ख और तुलसी किंवा शालग्राम शंख, तुलसी एकत्र सुरक्षित करता वह महाज्ञानी होता है और भगवान् हरिका प्रिय होता है ।।७०।।

पशुपतिदर्शनमाहात्म्यम्

-o-

शिव-गंगाजलस्नायी संस्पृश्य पशुविग्रहम् ।
पश्यन् पशुपतिं भक्त्या निष्पापः शाङ्करं व्रजेत् ।।१।।

[स्कन्दपुराण]

वाग्वती (वाग्मती) नदी (शिवगङ्गा) में स्नान कर के आर्या तीर्थ आर्यघाट के तटवर्ति मृगेश्वर को स्पर्श कर भक्तिपूर्वक पशुपति नाथका दर्शन करता हुआ मनुष्य पाप रहित होकर शिव-लोक को प्राप्त होता है ।।१।.

सर्वथा तान् पशून् पाति तैश्च यद्रमते पुनः ।
तेषामधिपतिर्यश्च तस्मात् पशुपतिः स्मृतः ।।२।।

सर्वदा उन पशुओं को (जीवों को) जो रक्षा किया करते हैं और उन्हों से फिर क्रीडा करते है, उन सहचर जीवों के अधिपति होने से उन्हे पशुपति कहा गया है ।।२।।

संक्षेप में पशुपति कौन हैं क्यों पशुपति कहे गए सो स्पष्ट किया गया, विशेषतः पशुपति कैसे बने इस विषय में प्रकाश डाला जायेगा ही, उस के पूर्व शिव दर्शन क्रम और परिक्रमा क्रम का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। अव यहाँ पर पशुपति का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयाश करूँगा। तव दर्शन परिक्रमा क्रम लिखकर अन्य कथानक लिखूँगा ।।

केदार खण्ड, केदार कल्प हैमवत् माहात्म्य अनुसार पशुपति नाथ महादेव का विग्रह केदार नाथ जीका शिरोभाग हैं दोनों मिलकर एक ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप होते हैं। इसलिए जिस ने केदार नाथ का दर्शन किया हो उन्हे पशुपति नाथ का भी दर्शन करना आवश्यक है, अन्यथा उस दर्शन का पूर्ण फल प्राप्ति नही मिल सकती ऐसा पुराणों में लिखा है।

भगवान् आशुतोष पशुपतिनाथ के चार (प्रत्यक्ष में) मुह हैं इन्हे चार धाम कहकर दर्शन किया जाता है, इन के दर्शन से परम शान्ति मिलती है, अर्जुन ने इन्ही से शान्ति और पाशुपतास्त्र प्राप्त किये थे, आज भी अशान्त संसार के लोग यहाँ आकर इनका दर्शन करने से अपने में शान्ति का अनुभव कर रहै हैं ये प्रत्यक्ष देवाधिदेव है। उन चार धामों में पशुपतिनाथ की पश्चिम मूर्ति सद्योजात' है शिर में मुकुट समानका मूर्ति 'द्वारका' है। उत्तर 'वाम देह' अर्धनारीश्वररूप 'केदार' भगवान् है। दक्षिण मुख अघोर 'प्रशान्त' रुद्राक्षमाला धारण किए हुए, 'रामेश्वर' हैं। पूर्वमुख 'तत्पुरुष' जटाजूटधारी 'जगन्नाथ' हैं। इन के अतिरिक्त

ऊर्ध्वमुख 'ईशान' सशक्तिक ॐकार स्वरूप परब्रह्म तत्त्व हैं। 'अधराऽऽम्नाय' कालाग्नि रुद्र [हाटकेश्वर] हैं।

पूर्व- महादेव सोम सूर्य अग्निरूप त्रिनेत्र भूमि मुख तत्व भगवान् हैं और वायु तत्त्व भी हैं। 'रौद्र मुख'। उत्तर- वामदेव उमावक्त्र जलतत्व, द्विलोचन भगवान् 'सूर्य देवता'। दक्षिण- रौद्र मुख भैरव देवता त्रिलोचन 'तेजतत्व'। पश्चिम- नन्दिवक्त्र सद्योजात महादेव त्रिलोचन 'पृथ्वी तत्व'। ईशान- ऊर्ध्वमुख आकाश तत्व त्रिलोचन सदाशिव महादेव।

लिखा भी है विष्णु पुराण में (उत्तरखण्डे)
मार्कण्डेय वचन।

सद्योजातं वामदेवमघोरं च महाभुजं।
तथा तं पुरुषं ज्ञेयमीशानं पञ्चमं मुखम् ॥१॥

भगवान् सदाशिव के मुख्य पाँच विग्रह हैं। उन में सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान ये पाँच नामों से पुकारे जाते है ॥१-२॥

सद्योजातं मही प्रोक्ता वामदेवं तथा जलम्।
तेजस्त्वघोरं विद्यात्तं वायुस्तत्पुरुषं मतम् ॥२॥
ईशाने च तथाकाशमूर्ध्वस्थं पञ्चमं मुखम्।
विभागेनाथ वक्ष्यामि शम्भोर्वदनपञ्चकम् ॥३॥

महादेवमुखं ज्ञेयं पूर्वं शम्भोर्महात्मनः ।
नेत्राणि त्रीणि तस्याहु सोमसूर्यहुताशनाः ॥४॥

सद्योजात मुख पृथ्वी, वामदेव मुख जल, अघोर मुख तेज, तत्पुरुष मुख वायु, ईशानमुख आकाश और पाँचवां ऊर्ध्व मुख हैं, इन्हे विभाग करने से पूर्व महादेव मुख हैं, तीन सोम सूर्य अग्नि नेत्र हैं ॥३–४॥

दक्षिणां तु मुखं रौद्रं भैरवं तत्प्रकीर्तितम् ।
पश्चिमं यन्मुखं तस्य नन्दिवक्त्रं तदुच्यते ॥५॥

दक्षिण मुख रौद्र हैं उनको भैरव रूप माना गया है, पश्चिम जो मुख हैं उसे नन्दिवक्त्र कहा गया ॥५॥

उमावक्त्रं च विज्ञेयं तस्य देवस्य चोत्तरम् ।
सदाशिवाख्यं विज्ञेयं पावनं तस्य पञ्चमम् ॥६॥
त्रिलोचनानि सर्वाणि वामदेवं द्विलोचनम् ।
महादेवमुखं भूमिस्ततः स्याद्भैरवं मुखम् ॥७॥

उत्तर मुख को उमावक्त्र कहा गया हैं। अति पवित्र सदाशिव देव है पाँचवा मुख, इन के तीन लोचनें हैं परन्तु वामदेव द्विलोचन हैं। महादेव मुख भूमि है उसके वाद भैरव मुख हैं ॥६–७॥

नन्दिवक्त्रं तथा वायु रौद्रेयं चाप उच्यते ।
सदाशिवमुखं शेषमाकाशं यदुनन्दन! ॥८॥

दिशोदशभुजास्तस्य विज्ञेयं वदनं प्रति ।
महादेवकरे ज्ञेया त्वक्षमाला कमण्डलू ॥९॥
सदाशिवमुखे ज्ञेयौ चापबाणौ महाभुज ।
माहेश्वरं ततश्चाप पिनाकमिति शब्दितम् ॥१०॥

नन्दिवक्त्र (पश्चिम) वायु है रौद्रेय जल है। सदाशिव मुख आकाश है। दश दिशाएँ उनके भुजाएँ है। महादेव के हाथ में रुद्राक्ष माला और कमण्डलू हैं। सदाशिवका चाप और बाण हैं, वे महाभुज है। महेश्वर के चाप और पिनाक धनु शब्दायमान हैं ॥८–१०॥

तेषां तु पूर्वमेवोक्तं व्याख्यानं रिपुसूदन ।
दण्डश्च मातुलुङ्गश्च करयोर्भैरवस्य तु ॥११॥
मृत्युदण्डौ विनिर्दिष्टौ मातुलुङ्गस्तथाकरे ।
जगद्बीजस्य सर्वस्य ये राजन्परमाणवः ॥१२॥
तैः पूर्णं बीजरत्नं तु भैरवस्य करे स्मृतम् ।

भैरव के हाथ में दण्ड और बिल्ली हैं वैसे ही मृत्यु दण्ड औ मातुलुङ्ग बिडाल, सर्प भी हैं सम्पूर्ण जगद् का कारण स्वरूप परमाणु ओं से पूर्ण जीवरत्न भैरव के कर में हैं ॥११–१२॥

चर्मशूले करे ज्ञेये वन्दिनो यदुनन्दन ॥१३॥
पूर्वमेव च ते प्रोक्तं धर्मव्याकरणं मया ।
त्रिशूलदण्डमव्यक्तं शूलेषु व्यक्तता गतम् ॥१४॥

नन्दि मुख के करों में चर्म और शूल हैं वैसे ही धर्म और व्याकरण शास्त्र उन में स्थित हैं। त्रिशूल और दण्ड अव्यक्त हैं शूल में वे व्यक्त हुए हैं, ।।१३–१४।।

सत्त्वं रजस्तमश्चैव विज्ञातव्यं नरोत्तम ।
दर्पणेन्दीवरे ज्ञेये तथा देव्या करद्वये ।।१५।।
आदर्शं निर्मलं ज्ञानं वैराग्यं च तथोत्पलम् ।
महादेवस्य देवस्य व्याख्याता ब्रह्मणा जटाः ।।१६।।
ऐश्वर्यं तु कला चान्द्री मूर्ध्नि शम्भोः प्रकीर्तिता ।
त्रैलोक्यशमनः क्रोधो वासुकिर्नामतः स्मृतः ।।१७।।
तृष्णाविशाला चित्रा च व्याघ्रचर्म प्रकीर्तितम् ।
वृषो हि भगवान्धर्म श्चतुष्पादः प्रकीर्तितः ।।१८।।

विषय सत्व, रज, तम, हैं दर्पण औ युग्म नीलकमल देवी के करों में है, आदर्श निर्मल ज्ञान है, कमल वैराग्य है, महादेव देव के जटा वैसे ही है जो पहले कही गई, ऐश्वर्य चान्द्री कला शिर में हैं, त्रिलोक को शमन करने वाला, क्रोध ही वासुकि है, विशाल और चित्र विचित्र रूपा तृष्णा, व्याघ्रचर्म है, भगवान् चतुष्पाद वृष धर्म है ।।१५–१८।।

जगदुत्पादकं वस्तु प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता: ।
शुक्ला च प्रकृतिः सर्वा तेन शुक्लो महेश्वरः ।।१९।।
एतद्धि तस्याप्रतिमस्य रूपं तवेरितं सर्वजगन्मयस्य ।
एवं शरीरेण जगत्समग्रं स धारयत्येव जगत्प्रधानः ।।२०।।

जगत् को उत्पन्न करने वाला वस्तु प्रकृति है, सारी प्रकृति शुक्ल वर्णा होने से महेश्वर भी शुक्ल स्वरूपी हैं, उस अप्रतीम भगवान् का रूप ऐसा ही है, वह सर्व जगन्मय भगवान् उनका शरीर से ही सम्पूर्ण जगत् को धारण करते है, वह जगत् के प्रधान है ।।१९-२०।।

प्रत्यक्ष अष्टमूर्तिः-

१ जल, २ अग्नि, ३ यजमान, (आत्मा) ४ सूर्य, ५ चन्द्र, ६ आकाश, ७ पृथ्वी, ८ वायु यी अष्ट मूर्ति सदाशिव मानिन्छन् ।

सृष्टिका मुख्यतत्त्वः-

१ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, (सूर्य) ७ आत्मा, (यजमान) ८ मन, (चन्द्रमा) यी आठ तत्व-रूप सृष्टिका कारण भूत सदाशिव लाई नमस्कार छ ।

यसको यथार्थ स्थान मिलाई ध्यान मनन गर्नु पर्दछ माथि उल्लेख भए यैं ।

नेपाली जो नसमझते हो वे भी समझे की उपर लिखे प्रत्यक्ष अष्टमूर्तियाँ सदाशिव माने जाते हैं । और उपर के सृष्टि के अष्ट तत्वों को प्रधानतः सृष्टिके कारण भूत सदाशिव माने जाते है, ये सभी पशुपति नाथ ही है ।

पूर्वादि मुखों का दर्शनफल

१–पूर्वेश्वर दुःख नाशक, ज्ञानदाता, और पापियों को भोगादिद्वारा पीडा करने वाले है। पूर्व मुखदर्शनोपासना से मन्त्र-योग प्राप्ति और तद् रूपत्व प्राप्ति होता है।

२– पश्चिम मुख भैरव संहार कारी रुद्र देवता। जन्मनाशक और उसके लिए, तत्वज्ञान के प्रेरक, संसार सागर से पार उतारने वाले हैं। पश्चिम मुख दर्शनोपासना से ऐहिक फल और कर्मयोग प्राप्ति होते है।

३–उत्तर मुख वामदेव दर्शन से अनुग्रह, अन्तर्लीनता, सामीप्यता प्राप्ति, उत्तराम्नायका देव।

१. वामदेव [महादेव] पीठ शक्ति के अधिपति हैं।
२. ज्येष्ठ वामदेवका विग्रह है।
३. श्रेष्ठः ,, ,,
४. रुद्रः ,, ,,
५. काल महाकाल ,, ,,
६. कलविकरण ,, ,,
७. वलविकरण ,, ,,
८. वल ,, ,,
९. वलप्रमथन ,, ,,
१०. सर्वभूतदमन ,, ,,
११. मनोन्मन जीवकोदमन वा शासन करते हैं।

४– **दक्षिण** १ अघोर (सात्विक शान्त स्वरूप) २ घोर (रजोगुण रूप) ३ घोर–घोरतर (तमोगुण रूप)

१– अघोर सर्वः सृष्टि कर्ता (जन्मादि भयनाशक) हैं।

२– घोर शर्वः पालनकर्ता (मृत्युदारिद्र्यादि भयनाशक) हैं

३– घोर घोरतर रुद्र विनाशकर्ता (भयादि दुःख विनाशक) हैं।

इनका दर्शनफल भक्ति योग और कालयोग हैं।

५– **ईशान सदाशिव** वेद शास्त्रादि चौसठ कलात्मिकाविद्याओं का नियामक, सकल जगत्प्राणीयों का नियामक, वेद प्रतिपालक, एवं हिरण्य गर्भका नियामक, शान्त एवं कल्याण स्वरूप, ॐकारात्मक सदाशिवरूप, सशक्तिक ईशानमूर्ति, ऊर्ध्वमूर्ति इनको मध्य भाग में दर्शन करना पडता है।

६– **छठा** अधराम्नाय अधो मुख अघोर मूर्ति भगवान् पशुपति–रुद्र के नाभि भाग में कालाग्नि रुद्र वा हाटकेश्वर कह कर दर्शन करें। दर्शनफल सायुज्य पद प्राप्ति होती है।

ज्ञातव्य बातें:– श्री पशुपति क्षेत्र दर्शन क्रम याद होना आवश्यक हैं।

[क] परिक्रमा क्रमसे गौरीघाट में गौरीतीर्थ, किराँतेश्वर, गुह्येश्वरी, का दर्शनकर के उपर सिढियाँ चढकर श्लेष्मान्तक वन में गौरी कुण्ड है (यह स्थल गोरक्ष नाथ से नीचे सिढि के मध्य भाग नीचे से उपर आने में) वायी ओर रहा हुआ गुफा हैं गोरक्ष नाथ विश्वरूप वन के मध्य में सतिस्तनोदर्शन (यहाँपर नीचे दुग्ध कुण्ड है) इधर रामचन्द्र नील सरस्वती. मङ्गलागौरी. भस्मे-

श्वर· आर्यातीर्थ में त्रिवेणी स्नान करके मृगेश्वर विरूपाक्ष को जल दान स्नान दर्शन पूजन करें ।

[ख] वक्षस्थलेश्वरी, (पूल के मध्य किनारे में स्थित) वत्सलेश्वरी, वा वछलेश्वरी एक ही है । इन देवी का दर्शन करके पशुपति मन्दिर क्षेत्र प्रवेश दक्षिण दरवाजा (बाहरी) से चौसठ लिङ्ग होते हुए भीतर प्रवेश कर पश्चिमी ओर नन्दीका दर्शन उत्तर त्रिशूल और उसके नीचे ज्वर हरेश्वर उसके नीचे भृगगण, समीपस्थ चण्डेश्वर दर्शन करे । ईशान कोणस्थ वासुकि नाग राज का दर्शन पूजन और वहाँ से पूर्व दरवाजा (बाहरी) होता हुआ वही मन्दिर के पास ही पूर्वतर्फ में लाल गणेश, सूर्य वही पास में अर्ध नारीश्वर, हरिहर, बटुक भैरव का भी प्रदक्षिण क्रमसे दर्शन करें । मुक्ति मण्डप के पूर्व सामू नीचे आर्याघाट का गङ्गा मन्दिर के शिरोभाग में श्रीयन्त्रका दर्शन मुक्ति पण्डप से पार की ओर देखना। मन्दिर के गुफा में एक शिवजी है उनका दर्शन करना मुक्ति मण्डप में सन्तानेश्वर है उनका दर्शन पूजन करके दक्षिण पूर्वकोण (आग्नेय) में शीतला भगवती और कीर्तिमुख भैरव है वे भैरव का भी दर्शन पूजन कर के पासही में उन्मत्त भैरव है उनका दर्शन पूजन करें । मन्दिर के दक्षिण तर्फ सामने ही ताम्र पत्र है इसे धर्म शिला कहा जाता है तामों से ढक जाने से 'ताम्र-पत्र' कहा गया है इनका भी दर्शन पूजन करने के वाद मन्दिर में दक्षिण दरवाजा से प्रवेश कर भगवान् पशुपति नाथ का दक्षिण मूर्ति का दर्शन दक्षिण मूर्ति के नाभि प्रदेश में अधोवदन कालाग्नि रुद्रका दर्शन ऊर्ध्व मुख दर्शन, करने के वाद पूर्वतर्फ होता हुआ

उत्तरकी ओर से उत्तर मुख दर्शन पूर्व से पूर्व मुख दर्शन नैऋत्य मुख दर्शन दक्षिण से ईशान मुख दर्शन, उत्तर से वा आग्नेय से आग्नेय मुख दर्शन दक्षिण वा पूर्व से वायव्य मुख दर्शन, करके पश्चिम मुख दर्शन उत्तर मुख दर्शन (उत्तर से पश्चिम घुमकर) पश्चिम मुख दर्शन, करके प्राङ्गण मे प्रदक्षिणा क्रम से नवग्रह दर्शन यज्ञशाला के भीतर अष्टमातृकाए, है (इनको नवदुर्गाएँ भी कहते हैं) उनका दर्शन पूजन करके अभय वर मुद्रा और वीर आसन में अवस्थित हनुमान स्वरूप शङ्कर भगवान् का दर्शन पूजन करके पश्चिम दरवाजा के पास (भीतर ही) नैऋत्य के तर्फ वीच ही में सत्यनारायण जो हैं इनका दर्शन पूजन करने से परिक्रमा दर्शन समाप्त होता है।

स्मरण रहे मन्दिर दर्शन क्रम में पूर्व से पश्चिम पश्चिम से पूर्व (उत्तर तर्फ में नहीं) करना ऐसा करने से सोम सूत्र उल्लंघन हुआ माना जाता है उसे लांछना नहीं होता है। परिक्रमा के प्रसङ्ग में कुछ और ज्ञातव्य विषय है।

किसे कैसी प्रदक्षिणा करनी होगी !

'एकां विनायके कुर्यात् द्वे सूर्ये त्रीणि शङ्करे।
चत्वारि केशवे दद्यात् सप्ताऽश्वत्थे प्रदक्षिणा' ॥

(गृह परिशिष्टे)

'प्रदक्षिणत्रयं कुर्याच्छिवस्यायतने नरः ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः' ।।

(आदित्यपुराणे)

'एकां चण्डयां रवौ सप्त, तिस्रोदद्याद् विनायके ।
चतस्रः केशवे दद्याच्छिवे स्वर्धं प्रदक्षिणाम्' ।।

(बृहन्नारदीये)

'पदान्तरे पदं न्यस्य करौ चलनवर्जितौ ।
स्तुतिर्वाचि हृदि ध्यानं चतुरङ्गप्रदक्षिणम्' ।।

(बृहन्नारदीये)

'सव्यं व्रजेत्ततोऽसव्यं प्रणालं नैव लङ्घयेत् ।
वृषं चण्डं वृषं चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम्
चण्डं च सोमसूत्रं च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम्' ।।

(बृहन्नारदीये)

'अपसव्यं यतिः कुर्यात् सव्यं तु ब्रह्मचारिणः ।
सव्यापसव्यं गृहिणो नित्यं शंभोः प्रदक्षिणम्' ।।

(हेमाद्रौ)

सोमसूत्रप्रमाण

प्रासादविस्तारसमानसूत्रं भवेदुदीच्यां दिशि सोमसूत्रम्।
सूत्राद् बहिर्लंघनतो नदोषः स्याद्दोष आभ्यन्तरलंघनेन ।।

(हेमाद्रौ)

मन्दिर वा मण्डप से उत्तर मन्दिर वा मण्डप विस्तार समान सूत्र परिमित दूरी से वाहर प्रदक्षिणा करने में दोष नहीं हैं मन्दिर वा मण्डप में उसे नही लाघना चाहिए ऐसा लिखा है। और भी:-

सोमसूत्रं द्वयं यत्र यत्र वा विष्णुमन्दिरम्।
अपलङ्घ्यं नचार्चीत कुर्वीतैव प्रदक्षिणम् ॥

(हेमाद्रौ)

इस प्रकार लिखा होने से जहांपर सोमसूत्र मन्दिर दो हों अथवा जहाँ विष्णुमन्दिर हो वहाँ सोमसूत्र वा वासुकि को प्रदक्षिणा करना ही होगा। स्त्री जातियों के लिए नाग पूजन प्रदक्षिणा करनेका विधान नहोने से विचारणीय वात है।

पशुपति नाम क्यों और कैसे पडा ?

इस प्रश्नको समाधान करने के लिए स्कन्द पुराण अन्तर्गत हिमवत्खण्ड नेपाल माहात्म्यकी कक्षा को किञ्चित् मात्र उद्धृत कर के समझाना योग्य समझता हूँ।

एक समय महाराज जनमेजय ने अपनी राजधानी हस्तिनापुर नगरी में सर्प यज्ञ महोत्सव किए, यज्ञ समाप्तिका दिन वडे बडे ब्रह्मज्ञानी, अति तेजस्वी ओजस्वी, तपोनिधि मुनिगण की वहाँ उपस्थिति थे। उस शुभ अवसर पर समुपस्थित मुनियों

म एक महातेजस्वी जैमिनी जी भी उपस्थित रहे उन्होने सर्प धर्मज्ञ महातेज शाली त्रिकालदर्शी मार्कण्डेय से प्रार्थना की–

हे सर्वधर्मज्ञ ! त्रिकालदर्शी मुनीश्वर जी ! आप से मैनें नानाविध मनोऽभिलषित फल देने वाले सर्व क्षेत्रका माहात्म्य श्रवण किया हूँ। अब मुझपर कृपा कर के भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाला नेपाल क्षेत्रका माहात्म्य सुनाइये ।

मार्कण्डेय बोले– हे जैमिने आपकी प्रार्थना से मैं नेपाल क्षेत्रका माहात्म्य कहता हुं सावधान होकर सुनो। 'नेपाल' पीठों में महान् पीठ और क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र भी है। इस क्षेत्र में नानाविध वृक्ष-फलों से परिपूर्ण नाना झरने से सुशोभित नाना प्रकार के पक्षी जातियों की मिष्ट शब्दो से गुञ्जित फूलों से सुसज्जित श्लेष्मान्तक नाम का वन है उसके सन्निकट से महेन्द्र शिखर से समुद्भुता वाग्मती नदी वहती है, उस अति पवित्र वन में भगवान् शङ्कर काशी नगरी छोडकर शान्ति प्राप्ति हेतु उमाको साथ लेकर रमण करने आये, और उस वन की शोभा-सौन्दर्य शान्त मनोहरण शील रमणीयता को देखकर मुग्ध हो गए। तब अपने सभी गणों को मृगरूप बनाए और आप और पार्वती भी मृग–मृगिणी रूप होकर उस श्लेष्मान्तक वन नें प्रवेश किए।

यहाँपर पाठको को शंका होनी चाहिए कि जिसवन में भगवान् मृगरूप से प्रविष्ट हुए उसे साधारण वन वा कानन न कह कर श्लेष्मान्तक यह विशेषण क्यों दिया गया इसका रहस्य क्या है ? इसका रहस्य यह है की लिखा है–

पादे हिमवतः पुण्ये रम्ये सिद्धाद्रिसंज्ञिते ।
श्लेष्मान्तकालये रम्ये शंकयामि महेश्वरम् ।।१।।
(पशुपतिपुराण अ० ९ ।१७)

पूर्व कथा प्रसङ्ग है भगवान् श्लेष्मान्तक वन में मृगरूप से प्रविष्ट हुए और वहीं मुग्ध हो बहुतकाल व्यतीत हुआ। कैलाश शून्य, काशी नगरी शून्य, अलकापुरी और वहाँ की देव सभा शून्य तब व्याकूल देवता ओं में मुख्य इन्द्र और विष्णु ब्रह्मा से जा बोले

भगवन् पद्मगर्भाभ ! पद्मयोनिरयोनिज !
त्रातुमर्हसि देवेश दुःखाच्छम्भोरदर्शनात् ।।२।।
(पशुपति पुराण अ० १७)

शम्भुं विना न लोकस्य कार्यं पद्मज शोभने ।
शम्भुं लोकस्य गोप्तारं न पश्याम्यधुना विभो? ।।३।।
(पशुपति पु० अ० १७)

हे भगवन् ? हे पद्मगर्भाभ ? हे अयोनिज ? हे देवेश ? शम्भु भगवान् का दर्शन नहोने से अति व्याकुल और दुःखी है उस दुःख से हमे रक्षा करो।

हे पद्मज शम्भु के विना किया कर्म का शोभा नही होती, अभी लोक रक्षक शम्भु का दर्शन नहीं पाए है। उधर भगवान् शङ्कर गौरी को आर्या तीर्थ में तप कराने और आप विहार करने हेतु से उन्हे समझाकर कहेथे कि:-

मृगयूथं समाविश्य रम्ये वनवरे शुभे ।
मृगरूपं समास्थाय चरिष्यामि सुलोचने ॥४॥
यदा मद्दर्शनोद्युक्ता ब्रह्मविष्णुपुरन्दराः ।
पृच्छन्ति यदि मद्रूपं कथ्यतां सुरसुन्दरी ॥५॥

हे गौरि मैं मृगो के समाज में समाविष्ट होकर रमणीय इस शुभ श्रेष्ठ वन में मृगरूप से विहार करूँगा, यदि मेरे दर्शन से उत्सुक ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र पूछेगे तो मैं इस रूप में हूँ कहकर समझा देना।

गौरी शिव गङ्गा (वाग्मती) नदी किनारे में आकर तपने लगी, उस पवित्र स्थल को आज आर्या तीर्थ कहा गया है, आर्या 'पार्वती' का है उसने तप किया तीर्थ होने से आर्या तीर्थ कहा गया है, यह भूमि आर्यावर्तका शिरो भाग है। आर्यावर्त नाम भी इसी के कारण पडा है। इतने में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, शिव को ढूँढते ढूँढते आर्या के सन्निकट आ पहुचे और पूछे जाने पर ब्रह्मा बोले:-

पादे हिमवतः पुण्ये रम्ये सिद्धाद्रिसंज्ञिते ।
श्लेष्मान्तकालये रम्ये शङ्कयामि महेश्वरम् ॥
(पशुपति पु० ९-१७)

पवित्र और रमणीय सिद्ध पर्वत (मृगस्थली) में जो हिमालय के पाव में है उस रम्य श्लेष्मान्तक नागराज (जो दक्षिणा-

श्चल में हैं) उनका आश्रम (घर) श्लेष्मान्तक नामकवन में भगवान् देवाधिदेव शङ्कर गए होगे। तो आप सब समझगए कि वह वन श्लेष्मान्तक नागराजका घर था इसलिए उसी नाम से पुकारा गया है। फिर आप महेन्द्र शिखरोत्पन्ना शिव गङ्गा किंवा वाग्मती नदी के वारे में शङ्का करेगें तो यह गङ्गा कव कैसे हुइ? हिरण्य कशिपु को मार कर इच्छा रूप नरसिंह ने मृग होकर जिस पर्वत में विचरण किया था, वहां मृगों के मध्य मे प्रधान होने से वे मृगेन्द्र के रूप में रहे। इस स्थलपर अभीतक वे प्रधान मृगेन्द्र शिलामृग के रूप में विराजमान है। तो वहाँ वाग्मती नदी उत्पन्न हुइ किस समय? प्राचीन समय में दैत्यराट् प्रह्लाद ने एक सहस्र वर्ष तक रुद्रकी आराधना की। उसका तपका प्रभाव से सन्तुष्ट भगवान् हर ने प्रकट होकर अट्टहास किया, बुद्धिका अधिष्ठाता महादेव के रमणीय हास्य के किरणों के समूहों से पर्वत शिखर पर पुण्यमय जलाशय वाली नदी उत्पन्न हुई यह नदी हर के वचन से उत्पन्न होने से वाग्वती (वाग्मती) कही जाति है यह गङ्गा से मिलति है।

वहाँ पर जाकर देवों ने भगवान् की स्तुति की परन्तु शिव दर्शन नहो सका, तो गौरी मिली उनसे पूछे जानेपर भगवान् सदाशिव मृग रूप में (एक मृग त्रिनेत्र) श्लेष्मान्तक वन में विहार कर रहे है अभी वे वनके मध्य सिद्धाचलपीठ के मध्य में हैं। इतनी वात पार्वती (गौरी) से पता चलने पर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वहाँ गए और प्रार्थना में लगे। ब्रह्मा ने प्रार्थना कीः-

ब्रह्मोवाच ।

नमस्त्रैलोक्यनाथाय त्र्यम्बकाय नमोनमः ।
हराय हरिकेशाय हेमवीर्यपराय च ।।१।।
रुद्रेश्वराय रुद्राय रूरूवक्षशिराय च ।
व्यक्ताव्यक्तशरीराय जगतां सृष्टिहेतवे ।।२।।
कैलाशवासिने चैव मेरूमन्दरचारिणे ।
हिमवद्वासिने चैव विन्ध्याद्रिनिलयाय च ।।३।।
श्लेष्मान्तकवने रम्ये चक्रक्रीडाविधायिने ।
मृगरूपं समास्थाय मृगमध्यविचारिणे ।।४।।
वरदानैकदक्षाय स्थित्यनुग्रहकारिणे ।
त्राता त्राणार्थिनां नित्यं नमोस्तु ते नमोस्तु ते।।५।।
नानाभिर्विविधैः पुण्यैः स्तुत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ।
भगवान् पद्मगर्भाभ पुनरेवेदमब्रवीत् ।।६।।

ब्रह्मोवाच ।।

व्यक्तीभव महादेव व्यक्तीभव महेश्वर ।
त्वं हि नः शरणार्थानां त्राता त्रिभुवनेश्वर ।।७।।

इस प्रकार से नानाविध स्तुति करने पर भी भगवान् सदा शिवने दर्शन नहीं दिए तो थके हुए ऋषिगण ब्रह्मा विष्णु इन्द्र ने फिर स्तुति करके वाद में वहा एक पुष्टाङ्ग चिकने शरीर वाला

अतिशय सुन्दर तथा एक शृङ्ग त्रिनेत्र मृग के रूप में भगवान् शिव को और मृगिणीरूपा पार्वती को देखा सभी देवता आश्चर्य हुए और उपरोक्त प्रकारों से नाना स्तोत्र-मन्त्रों से स्तुति किए। तव भी भगवान् रुद्र ने अपना मृगरूप को त्यागा नहीं। अव के वारि में ब्रह्मा विष्णु इन्द्र ने परस्पर सल्लाह किए और उस एक शृङ्ग त्रिनेत्र मृग को शृङ्ग में पकडकर अपने वश में लेनेका निश्चय किया। और तीनों जुटकर एक साथ रहे और दो-दो हाथों से मृगका शृङ्ग को वल पूर्वक पकडे शृङ्ग पकडते हि मृगरूप महेश्वर भाग गए शृङ्ग चार टुक (खण्ड) हो गया। भागते हुए भगवान् रुद्र वाग्मती नदी तटपर पहुँचकर वहाँ अलप अन्तर्ध्यान हो गए और मृगरूप शरीर पाषाण रूप में रहा, वे वहीपर उपर प्राङ्गण में ज्योतिरूप से प्रकट हुए। (पाषाण रूप मृग का रूप अभी भी आर्या तीर्थ आर्यघाट में अवस्थित है, और मृगेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। यहीं पर मातृ गमन-पाप से मुक्त विरूपाक्ष [ब्राह्मणरूप शिव] की मूर्ति विद्यमान है पशुपति नाथ का दर्शन पूर्व इनका दर्शन करना अत्यावश्यक है सो पहले भी सूचित किया गया।) यहस्थान [ज्योतिस्थल] अभी भगवान् पञ्चदेव के रूप में देवपत्तन नगरी का पूर्व वाग्मती नदी की दायीं तट पर विराजमान है जिसे हम सब पशुपति नाथ नाम से जानते है।

जहाँपर भगवान् सदाशिव जाकर ज्योतिः स्वरूप में रहे वहाँ ब्रह्मादि देव पहुँचे औ विनम्रता पूर्वक प्रार्थना कर बोले—

हे महारुद्र? आपके विना चर-अचर सम्पूर्ण जगत् शून्य प्रतीत हो रहा है, अतः कृपा कर के आप काशी नगरी अथवा

स्वर्ग (कैलाश) पर पधारें। इस प्रकार से देवताओं ने प्रार्थना करने के बाद भगवान् रुद्र बोले:-

स्थास्याम्यत्र वने रम्ये न यास्यामि च कुत्रचित् ।
स्थितोऽहं पशुरूपेण श्लेष्मान्तकवने यतः ।।१।।
अतः पशुपतिर्लोके मम नाम भविष्यति ।।
ये मां पशुपतिं देवा द्रक्ष्यन्ति मनुजा भुवि ।।२।।
पशुजन्म न तेषां तु मत्प्रसादाद् भविष्यति ।
महेन्द्रशिखराद्रम्यां मम हासाद्विनिर्गताम् ।।३।।
वाग्मतीं ये च द्रक्ष्यन्ति ते नराः पुण्यभागिनः ।
मृगेन्द्रशिखरं गत्वा पीत्वा वै वाग्मतोजलम् ।।४।।
द्रक्ष्यन्ति मां पशुपतिं न ते स्युः पशवो द्विज ।
पशुकुण्डे नरः स्नात्वा पदाऽऽक्रम्य मृगस्थलीम् ।।५।।
किरातेश्वरमभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
कार्तिके कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां मृगस्थलीम् ।।६।।
प्रदक्षिणीं करिष्यन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ।
इन्द्रेण विष्णुना धात्रा यद्यच्छृङ्गं धृतं मम ।।७।।
आत्माभिलषिते स्थाने तं लिङ्गं स्थाप्यतां मम ।

[ने० माहात्म्ये]

हे ब्रह्मादि देवों ! इस अतिरमणीय श्लेष्मान्तक वन को छोडकर अन्यत्र मैं नही जाउँगा यही रहता हुँ। यहा मैं पशुरूप से

रहता हुँ, अतः मेरा नाम पशुपति रहेगा इसी नाम से मै प्रसिद्ध हूँगा, जो देव या मनुष्य मेरा दर्शन करेगा उसका पृथ्वीतल में पशुजन्म नहीं होगा, मेरी प्रसन्नता की हसी से महेन्द्र शिखर पर से उत्पन्ना वाग्मती नदी का जो दर्शन करेगें वे पुण्य भागी होंगे, और महेन्द्र शिखर (वर्तमान वाग्द्वार) मे जाकर वाग्मती का जल जो पान करेगा और मेरा दर्शन करेगा उस मनुष्य का पशुजन्म नहीं होगा । जो पशुकुण्ड में (गोरक्षनाथ से गुह्येश्वरी जाने में दायी तरफ किनारे मे स्थित बडा गुफा) स्नानकर पावों से मृगस्थली को प्रदक्षिणा करके किरातेश्वर शिवलिङ्ग को [काठमाण्डौ गौरी-घाट से दक्षिण पूर्व गुह्येश्वरी से २५ धनु दूरी पहाडपर स्थित शिव लिङ्ग] पूजा करेगा वह आदमी सम्पूर्ण पापों से मुक्त होगा। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी [नरक चतुर्दशी] के दिन में मृगस्थली को प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य स्वर्ग गामी होगा । ब्रह्म विष्णु और इन्द्र ने जो मृगरूप मेरा शृङ्गको पकडे और वह चार टुकडा (खण्ड) हो गया, वह शृङ्ग आप लोग मनचाहे स्थलपर ले जाकर स्थापित करें ।

इतने ही में गौरी बोलीः— प्रभो मै आपके सान्निध्य में वाग्मती तट पर रहूगी । फिर शिव बोलेः—

अत्यन्तगुप्तं गिरिजे ? कथयामि तवाग्रतः ।
पूर्वे भवे दक्षकन्या सती नाम्ना व्यवस्थिता ।।१।।
अपमानेन तातस्य प्राणास्त्यक्ता त्वया शिवे ।
मया स्नेहेन ते देवि ? कुणपं कण्ठसंस्थितम् ।।२।।

कृत्वा महीपर्यटणं कृतं शोकाकुलेन च ।
शोकाकुलं च मां दृष्ट्वा विष्णुस्नेहवशेन मे ।।३।।
सुदर्शनेन चिच्छेद तवाङ्गानि स्थले-स्थले ।
तवाङ्गपतितं गुह्यं वाग्मती तटिनी तटे ।।४।।
मृगस्थल्या उदीच्यां तु तत् पीठं परमं महत् ।
मम वात्सल्यतो यस्मात् स्थातुमिच्छसि पार्वति ! ।।५।।
तस्मात् ते वत्सला नाम भविष्यति वरानने !
ममाग्नेय्यां सदा तिष्ठ ममाज्ञातो महेश्वरि! ।।६।।
वाग्मत्याः पयसि स्नात्वा दृष्ट्वा त्वां वत्सलां शिवे ।
द्रक्ष्यन्ति मां नराः ये वै ते स्युः कैलासगामिनः ।।७।।
मत्सन्निधौ तेऽन्तिके वा गुह्येशी सन्निधावपि ।
ये जपन्ति नरा भक्त्या तेषां सिद्धिर्भविष्यति ।।८।।
इत्याकर्ण्य वचो देवी शङ्करस्य शुभाशयम् ।
स्थिता सा वत्सला तत्र वाग्मत्याः सरितस्तटे ।।९।।

हे गिरिजे ! एक अति गुप्त वात कहता हूँ सुनो। पहले जन्म में तूँ सती नाम की दक्षकन्या रही। तुमारे पिता ने मेरा किया अपमान से तुमने प्राणों को त्याग दिए जाने पर स्नेहाभिभूत होकर तुमारी कङ्काल को गले लगाकर सशोकाकूल मैं भ्रमण करने लगा, वैसा मुझ को देख स्नेहवश होकर विष्णु ने सुदर्शनचक्र द्वारा काट-काट कर तुमारी कङ्काल शरीर को गिराए, तुमारी गुप्ताङ्ग (गुह्यद्वार) मृगस्थली से उत्तर वाग्मती तट पर

गिर पडा वह तेरा बडा पीठ है। गुह्येश्वरी वात्सल्य–प्रेम से तूँ मेरे समीप मे रहना चाहती है अतः तेरा नाम वत्सला रहेगी। मेरी आज्ञा से तूँ मुझ से आग्नेय दिशा मे जाकर वाग्मती तट में निवास कर। जो मनुष्य वाग्मती के जल (आर्या तीर्थ में) से स्नान कर तुझे (जल दान पूर्वक) दर्शन पूजन कर के मुझ को दर्शन करेगें वे अवश्य कैलास में जायेंगे। मेरे समीप वा तुह्मारे समीप अथवा गुह्येश्वरी के सन्निकटता में जो जप करेगा उसे सिद्धि मिलेगी। इसप्रकार भगवान् सदा शिव–रूद्र भगवान् की शुभाशय श्रवणकर के पार्वती वाग्मती नदी– तट पर वत्सला नाम से रहने लगी।

विष्णु उस शृङ्ग को लेकर उत्तर में वाग्मती तटपर स्थित उत्तुङ्ग अति मनोहर शिखर पर गए और उसे स्थापित किए उस पशुपाशमोचक लिङ्ग दर्शन से मनुष्य सर्व पापों से मुक्त होता है। इसे गोकर्ण कहते है, जो यहाँपर भाद्र मास अमावास्या के दिन श्राद्ध करेंगे वे अपने पितरों को तारेगें। जो गोकर्णेश्वर के समीप भृगु पतन करेगें उनका मनोरथ पूर्ण होंगे। ब्रह्मा भी शृङ्ग को लेकर दक्षिण सागर में जाकर उस को स्थापित करने में सफल हुए। वह दक्षिण गोकर्ण क्षेत्रों मे उत्तम क्षेत्र है। इन्द्र ने भी शृङ्ग को लेकर अमरावति में संस्थापित किए, वह लिङ्ग सम्पूर्ण कामों को पूर्ण करने वाला है।

वाग्वत्याः सरितस्तीरे पशुपाशविमोचकः।
एवं श्लेष्मान्तकवने नाम्ना पशुपतिः स्मृतः॥(४९)

इस प्रकार वाग्मती नदी तिर में स्थित श्लेष्मान्तक वन मे

पशुपाश को नाश करने किंवा पशुपाश से छुटाने वाले पशुपति नाम के सदाशिव ज्योति रूप में प्रकट हुए।

श्रीमत्पशुपति पुराण के अध्याय अठारवे में ब्रह्मा ने व्यक्त (प्रकट) हो जाइए कहकर प्रार्थना करनेके वाद भगवान् आकाश वाणी द्वारा बोले कि मेरे मृग शरीर से तुमे क्या काम मेरी क्रीडा समाप्त अभी नहीं हुइ है, इस प्रकार के प्रबोधन से मै स्वर्ग मे नही आता हूँ। हिमालय के पवित्र पाद स्थल में नागह्रद नामका प्रसिद्ध तालाव है वहाँ वाग्मती का जल को रोका गया है। अति रमणीय शैल मालाओं से गोपित लोगो के लिए दुर्लभतर उस स्थान मे वासुकि का तपोबल से मै जाउँगा। कलियुग में कृष्णका पुत्र बली प्रख्यात प्रद्युम्न होगा, वह ब्रह्मा के वर से दर्पित महेन्द्र दमन को दमन करेगा। इन्द्र दमन मारे जाने के वाद वाग्मती का वाध को (सेतु) तोड कर कृष्ण वाग्मती को मुक्त करेङ्गे। तव वाग्मती नदी रूपा होगी अभी के वन मण्डल जनपद (जिले) छोटे वडे ग्राम हो जायेगे तव उस हरिण-शरीर से शिला तनु होकर समुत्पन्न होउँगा। वहुत सी गो-दुग्ध धाराओं से सिक्त हो देखकर मुझे लोग खोद कर निकालेगे मेरी मूर्ति को देखेंगे। चाँपवृक्षों की छाया से सुशोभित मेरा चतुर्मूर्ति रूप घट (चतुर्मुख पशुपति नाथ) विग्रहका पूजन उस समय म्लेच्छ लोग किया करेंगे, और भक्तिपूर्वक किराँत लोग पूजेंगे किरात राजाको प्रत्यय द्वारा जीतकर वैशाली अधिपति बली राज्य करेगा। यहाँ राज्य प्रदान आदि बहुत अधिकारों मे ब्राह्मणों के नियोग से प्रवृत्ति सम्भव होगी ॥१४॥

लिच्छवी राजाओं कि शुभराज्यभूमि का आश्रय मे बाहर के देशों से आकर प्रजा रहेंगे । मेरे शासन से शिशुपाल का अवतार श्रीमान् यक्षवर्मा [भक्तवर्मा वा भक्ष वर्मा] लोक मे अनेक कीर्ति कमायेगा । यहाँ मेरे तेज से समस्त प्रजा पुण्यशील और राजा धार्मिक रहेंगे और समृद्ध एवं विचित्र प्रासादों, देवालयों की पंक्तियाँ होंगे, है भी, उस समय देशवासी प्रजा भक्ति पूर्वक लोकों की वन्दनीय मेरी कूटाङ्गार के उदर मे स्थित मूर्ति को पूजेंगे । मेरे दक्षिण भाग में जो भक्त प्राणों को छोडेगा उसक्षेत्र के प्रभाव से नरक नहीं जायेगा । मेरे पूर्व भाग में वाग्मतीका जल से जो स्नान करेगा उसे महान् पुण्य होगा । मेरे पूर्वोत्तर भाग में वाग्मती के तटवर्ती शिखर पर वासुकि की पूजा दर्शन आदि मेरी पूजा (दर्शन) आराधना से पूर्व करना चाहिए ।।२१।।

घृत, मधु, इक्षुरस, आदि से गन्धोदक वा दुग्ध वा शीतल जल से, मेरा स्नान करे तो उसका महान् पुण्य फल होगा ! वैसा नर इसि पुण्य से स्वर्ग की गति पाएगा । इत्यादि प्रकार से वर्णन किया गया है । यहाँ अनेक तीर्थ लिङ्ग है विशेषतः लिङ्गो मे चौसठ लिङ्ग है और तीर्थो मे प्रधानतः विष्णु पदि [विष्णुमति] १ चक्रमार्गा नदी [वाग्मती] २ मणिमति [मनोहरा] ३ ये तीन नदीयाँ अति पवित्र और नदीयों मे श्रेष्ठ है ।

यहाँतक संक्षेप मे पशुपति क्षेत्र दर्शन प्रसङ्ग मे पशुपतिनाथ उत्पत्ति, उनका दर्शन पूजन और माहात्म्य के वातें लिखागया ग्रन्थ विस्तार भय से अन्य वातें अब नहीं लिखा जा रहा है, अवसर प्राप्त होने पर अथवा भक्तजनों से आग्रह किये जाने पर द्वितीय

वार प्रकाशन मे इस को विस्तृत किया जायेगा। इस ग्रन्थ को लेखने के लिए प्रेरणा देनेवाला, प्रिय वासु प्रसाद खतिवडा पशुपति देवपत्तन निवासी को साधुवाद प्रदान किए विना मै नहीं रह सकता हूँ और उसे मेरे तर्फ से आन्तरिक आशीर्वाद है वरोवर उन्नति पथ मे आगे बडे और ऐसा कार्यके लिए भगवान् सम्पत्ति के साथ ही सद्बुद्धि दे।

अव इसके वाद 'पशुपत्यष्टक लिखकर ग्रन्थ समाप्त करूँगा।

अथ पशुपत्यष्टकम्

शङ्कर त्रिदशानाथ दयालो !
भाललोचन हर त्रिपुरारे !
अच्युताऽव्यय कलाधरमौले !
मानसं पशुपते हर दुःखम् ॥१॥

हे कल्याण स्वरूप शिव ! हे देवताहरूका स्वामि ! हे दयालु, हे भाललोचन! हे त्रितापलाई नाश गर्दिने शिव ! हे त्रिपुरासुरका शत्रु ! हे अस्खलित हे नित्याऽविनाशि ! हे चन्द्रमालाई शिर मुकुटमा लिएका शिव ! हे पशुजन्मबाट जीवलाई मुक्त गर्दिने प्राणि मात्रका स्वामी ! मानसिक दुःखलाई नाश गर्नुहोस् ॥१॥

काल-काल करुणामय शूत्रिन् !
कान्तकाय कलिनाशनमूर्ते ! ।
कालकूटकलिताऽसितकण्ठ !
मानसं पशुपते हर दुखम् ॥२॥

हे काल-महाकालका विनाशक ! हे अतिशय दया गर्ने ! हे त्रिताप नाशन हेतुक त्रिशूल धारण गर्ने, हे सुन्दर शरीर हुनु भएका ! हे दुःखनाश गर्नको लागि मूर्तिरूप लिएका ! हे काल-कूट विष स्वीकार गर्नाले कालो घाँटी हुनु भएका ! हे पशुपाश विमोचक ! जीवमात्रका रक्षक शिव मानसिक दुःखलाई नाश गर्दिनुहोस् ।।२।।

केशवप्रिय पिशङ्गकपर्दीन् !
पार्वतीश्वर पिनाकधरेश ! ।
मन्मथप्रमथकालविकासिन् !
मानसं पशुपते हर दुःखम् ।।३।।

हे क्षीर समुद्रशायी विष्णुका प्रिय देव ! हे कपिलवर्ण जटाजूट धारि शासनकर्ता शिव ! पार्वति पति ! दुरित नाशन समर्थ पिनाक नामक धनु धारी ! हे कामदेव एवं शिव परिषद्का समयको प्रकाशक ! हे पशुपाश विमोचक सर्वजीव पालक सदा-शिव ! मानसिक दुःखलाई नाश गर्नु होस् ।।३।।

कुन्दहीरक सुधाकर गौर !
निष्कलङ्क निखिलागमवेद्य ! ।
त्यक्त निर्गुण गुणेश्वर जिष्णो !
मानसं पशुपते हर दुखम् ।।४।।

हे कुबेर को महानिधि (कुन्द) हीरा (वा, श्वेतकमल वा श्वेत करवीर र हीरा) एवं चन्द्र कान्ति जस्तो सेतो स्वच्छ वर्ण

हुनु भएका सदाशिव, कलङ्क हीन ! संपूर्ण वेदादिले जानिने ! त्रिनेत्र ! निर्लेप ! गुणेश्वर ! जयन शील ! पशुपाश विमोचक, जीवमात्रका प्रतिपालक सदाशिव ! मानसिक दुःख नाश गर्नु-होस् ।।४।।

पुण्यकीर्तन पुराज पुराणे !
पूर्णरूप पुरुषोत्तम पुण्य ! ।
पञ्चवक्त्र पुरुष प्रमथेन्द्र !
मानसं पशुपते हर दुःखम् ।।५।।

हे पुण्यात्महरूले गाइएका ! अति प्राचीन (अग्रय) त्रिपुरा-सुर शत्रु ! पूर्ण रूप ! त्रिपुरुष (ब्रह्मा विष्णु महेश्वर) मध्येमा उत्तम ! अति पवित्र ! पञ्चदेव शिव ! सर्वजीव शरीर निवासी (सर्वव्यापक) प्रमथादि गणका स्वामी ! पशुपाश विमोचक जीवमात्रका स्वामी, सदाशिव ! मानसिक दुःखलाई नाश गर्दिनु होस् ।।५।।

भोगिभूषणविभूषित भोग !
भूतिशोभित तनो हरिकेश ! ।
भक्तहृत्कमलवेश्मनिवासिन् !
मानसं पशुपते हर दुखम् ।।६।।

हे ! सर्पको गहनाले सिङ्गारिएको छ शरीर जस्को यस्ता विभूतिले सुशोभित शरीर कपिल वर्ण कपाल (हरिकेश) ! भक्त (सेवक) को हृदयकमल रूप घरमा निवास गर्ने, हे पशुपाश विमो-

चक जीवमात्रका प्रतिपालक सदाशिव ! मानसिक दुःखलाई हरण गर्नुहोस् । ६।।

शुद्धभावनतकन्धर लोक-
वृन्दवाञ्छित फलप्रद शम्भो ! ।
सृष्टिपालन नयैकनिदान !
मानसं पशुपते हर दुःखम् ।।७।।

शुद्ध (निःस्वार्थ) भावले झुकेको मेघले झैं लोक वृन्दको इच्छित फल प्रदान गर्ने अथवा शुद्ध निःस्वार्थ भावनाले कण्ठ झुकेका लोक वृन्दलाई चाहिने फल प्रदान गर्ने, स्वयं उत्पन्न–कल्याणकारक तथा सृष्टि गर्नु र पालन गर्नु रूप नियमको एकमात्र आदि कारण हुनु भएका पशुपाश विमोचक–जीवमात्र का रक्षक हे सदा शिव ! मानसिक दुःखलाई नाश गर्दिनुहोस् ।।७।।

दुष्टनिर्दलन निर्जर देव !
स्वर्णदीभुवनशेखर शर्व ! ।
वामदेव मतिगम्य महात्मन् !
मानसं पशुपते हर दुःखम् ।।८।।

हे दुष्ट विनाशक ! हे (निर्जर) वृद्धावस्थाले रहित ! हे क्रीडनादि गत्यन्त क्रियावान् ! (दिव्य देह) स्तुत्यर्ह ! स्वर्गंगा तथा त्रिभुवनलाई शिर मुकुटमा लिएका दुःख दारिद्र्य नाशक ! पञ्चदेवका उत्तर वक्त्ररूप अर्धनारीश्वर (वामदेव) हे रौद्र ! हे

बुद्धिले मात्र जानिने, हे महान् आत्मा पशुपाश विमोचक सदाशिव (पशुपति) मानसिक दुःखलाई हरण गर्नुहोस् ।।८।।

शङ्कराष्टकमिदं सुमनोज्ञं
रोगशोककलहार्तिविनाशम् ।
यः पठेत् सकलवाञ्छितसिद्धि-
स्तस्य तुष्ट इह शङ्करदेवः ।।९।।

रोग-शोक झगडा–दुःखलाई नाश गर्नमा समर्थ र अत्यन्त राम्रो यो शङ्कराष्टक (पशुपत्यष्टक) जसले पढ्छ त्यसको संपूर्ण कामनाहरू सिद्ध हुन्छन् एवं ऊ देखि यो लोकमा देवाधिदेव कल्याणकारी सदाशिव प्रसन्न हुनुहुन्छ ।।९।।

हिन्दी अनुवादः–

कल्याण कारक ! देवताओं के स्वामी, अत्यन्त कृपावान्, ललाट नेत्र, त्रिताप नाशक ! त्रिपुरासुर का अमित्र! अस्खलित! नित्य, अविनाशि ! चन्द्रमा को शिर में लिए हुए, पशुजन्म से जीव को छुटाने वाले, प्राणिमात्रका स्वामी ! (आप) मानसिक दुःख को नाश करें ।।१।।

हे काल महाकाल के विनाशक ! अतिशय दयालु, त्रिताप नाशक हेतुक त्रिशूलधारि (शिव!) हे सुन्दर शरीर ! हे दुःख नाशक हेतुक कलित शरीर ! कालकूट महाविषको स्वीकार करने

से कृष्ण ग्रीव ! हे पशुपाश विमोचक जीवमात्र के स्वामी (आप) मानसिक दुःखको नाश करें ।।२।।

हे क्षीर समुद्रशायी विष्णुके प्रियदेव ! कपिल-वर्ण जटाजूट धारि ! शासनकर्ता शिव ! पार्वति पति ! दुरित नाशन समर्थ पिनाक नामक धनुर्धारि ! हे कामदेव एवं शवी परिषद्का समय के प्रकाशक ! पशुपाश विमोचक ! जीवमात्र के पालक हरे ! (पशुपति) सदाशिव (आप) मानसिक दुःखको नाश करें ।।३।।

कुवेर का महानिधि (फुन्द) हीरा (वा श्वेत कमल वा, श्वेत करवीर) और चन्द्र कान्ति के समान स्वच्छ वर्ण वाले, कलङ्क रहित सपूर्ण देवादियों से जान जाने वाले, तीन आँखो से शोभित निर्लेप, और गुणेश्वर जयन शील ! पशुपाश विमोचक जीवमात्र के प्रतिपालक पशुपति सदाशिव (आप) मानसिक दुःखको दूर करें ।।४।।

हे पुण्यात्मों से गाए गए, अति प्राचीन (अग्रच) त्रिपुरासुर शत्रु ! पूर्णरूप त्रिपुरुष [ब्रह्मा विष्णु महेश] मध्य में उत्तम ! अति पवित्र पञ्चदेव शिव! सर्वजीव शरीर निवासि [व्यापक] प्रमथादि गणके स्वामी ! पशुपाश विमोचक, जीवमात्र के स्वामी सदाशिव पशुपति (आप) मानसिक दुःखको दूर करो ।।५।।

सर्पो के आभूषणों से विभूषित शरीर वाले ! विभूति से सुशोभित शरीर ! कपिल वर्णकेश वाले ! भक्तों के हृदय कमल रूप घर में निवास करने वाले हे पशुपाश विमोचक जीवमात्र के प्रतिपालक सदाशिव पशुपति (आप) मानसिक दुःखको दूर-करो ।।६।।

शुद्ध (निःस्वार्थ) भाव से झुके मेघ के समान लोकवृन्द की कामनाओं के शुभ फल प्रदान करनेवाले ! अथवा शुद्ध निःस्वार्थ भावना से कण्ठ झुके हुए लोक वृन्द को मन चाहा फल प्रदान करने वाले स्वयं उत्पन्न, कल्याणकारक तथा सृष्टि करना और पालन करना ही एकमात्र नियम (ध्येय) के आदि कारण स्वरूप पशु-पाश विमोचक जीवमात्र के प्रतिपालक [पशुपति] सदाशिव! आप मानसिक दुःख को नाश करें ।।७।।

हे दुष्ट विनाशक! हे (निर्जर) बुढापारहित! हे क्रीडनादि गत्यन्त क्रियावान् (दिव्यदेह) स्तुत्यर्ह ! स्वर्गंगा तथा त्रिभुवन को शिर मुकुट में लिए हुए, दुःख दारिद्रय नाशक ! पञ्चदेव के उत्तर वक्त्र [वामदेव] [अर्धनारीश्वर] हे रौद्र ! हे अतीन्द्रिय (बुद्धिगम्य) हे महान् आत्मा ? पशुपाश विमोचक (सदाशिव) पशुपति आप मानसिक पीडाको दूर करें ।।८।।

रोग-शोक वैरभाव (झगडायें) दुःखों [पीडा] को नाशने में समर्थ और अत्यन्त हृद्य (मनोहर) यह शङ्कराष्टक [पशुप-त्यष्टक] जो मनुष्य पढेगा उस के सारे कामनायें सिद्ध होङ्गे एवं उस से इसलोक मे देवाधिदेव कल्याणकारी भगवान् सदाशिव (पशुपति)· प्रसन्न रहेंगे ।।९।।

प्रत्यावर्तनतिथिः

Q 23: 4445
RCH
2036 B.S.

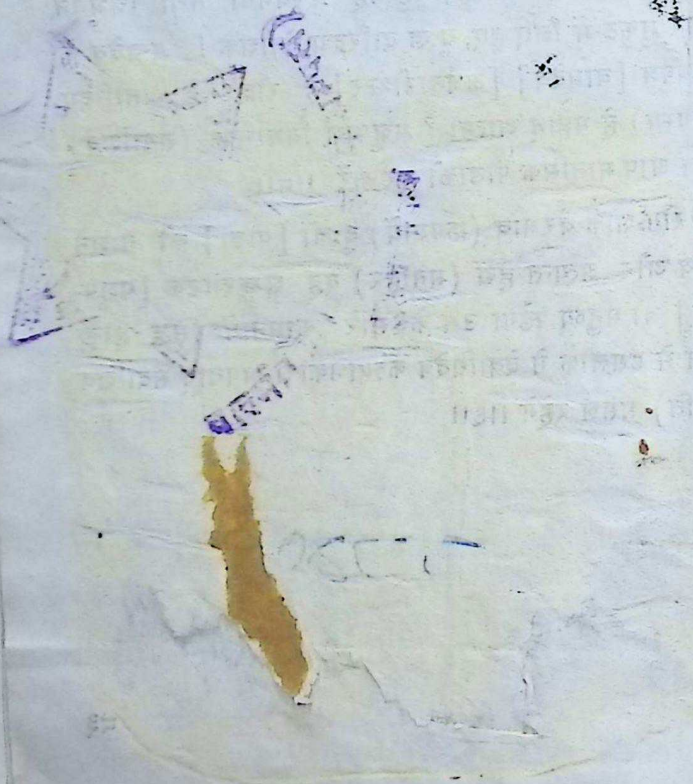

वाल्मीकिविद्यापीठ-पुस्तकालय

९०४८८

AUTHOR आचार्य लोकनाथ

TITLE पशुपतिदर्शनमहात्म्य

Q 23; 4445
ACH
2036·B·S

९०४८८

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय
वाल्मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

इ
पशुपति